वासवदत्ता का चित्रालेख

श्री भगवती चरण वर्मा

ग्रन्थ-संख्या—१६०

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती भंडार,
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
सं० २०१२ वि०
मूल्य तीन रुपए

मुद्रक
लल्ला प्रेस
बाई का बाग
इलाहाबाद—२

वासवदत्ता का चित्रालेख

वासवदत्ता का चित्रालेख

वासवदत्ता की कहानी एवं चित्रालेख मैंने सन् १६४७ में लिखे थे।

श्रीमती साधना बोस को एक कहानी की आवश्यकता थी, वह कहानी नृत्यप्रधान होनी चाहिए थी। मेरे पास संदेसा आया कि क्या मैं साधना बोस को प्रधान नायिका बना कर एक अच्छी कहानी लिख सकता हूँ।

जिस समय मुझसे। यह प्रश्न किया गया, मुझे रवि बाबू की एक कविता याद हो आई—उपगुप्त और वासवदत्ता के सम्बन्ध में। मैंने वायदा कर लिया कि मैं दो-तीन दिन में कहानी लिख दूंगा।

रवि बाबू की कविता का सारांश केवल इतना है:—

मथुरा नगर की नर्तकी वासवदत्ता अभिसार करके निकली। भिक्षु उपगुप्त भिक्षा मांग रहा था, वासवदत्ता ने उपगुप्त को देखा और वह उपगुप्त पर मुग्ध हो गई। वासवदत्ता ने उपगुप्त को अपने भवन में आमन्त्रित किया किन्तु उपगुप्त ने उसका निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। उपगुप्त ने वासवदत्ता से कहा—"सुन्दरी, तुम्हें आज मेरी आवश्यकता नहीं है। पर मैं तुम्हारे यहां अवश्य आऊंगा, तब जब तुम्हें मेरी आवश्यकता होगी।" और उपगुप्त वहां से चला गया।

उसके बहुत दिनों के बाद वासवदत्ता रुग्ण हुई। उसका शरीर विकृत हो गया। नगर वालों ने उसे उसके घर से निकाल कर बाहर फेंक दिया। वहाँ पड़ी हुई वह मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही थी कि उपगुप्त वहां आया। उपगुप्त ने उसके मरहम-पट्टी की। वासवदत्ता को जब यह ज्ञात हुआ कि वह उपगुप्त है तब उसने कहा—"तुम बहुत विलम्ब करके आये हो—मेरा रूप और यौवन नष्ट हो चुका है।" उस समय उपगुप्त

ने उत्तर दिया, "आज तुम्हें मेरी आवश्यकता है—इसलिए मैं यहां आया हूँ।"

रवि बाबू ने यह कहानी बौद्ध ग्रंथों से ली है। पर वासदवत्ता ऐतिहासिक व्यक्तित्व है, इसका कोई प्रमाण नहीं। आदर्शों को प्रतिपादित करने के लिए कल्पित कहानियाँ लिखी गई हैं। और मेरा कुछ ऐसा अनुमान है कि यह कहानी भी कुछ इसी प्रकार की कल्पित कहानी है। हां, उपगुप्त एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है—उपगुप्त अशोक का गुरू था। लेकिन उपगुप्त के जीवन के सम्बन्ध में भी कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।

मुझे रवि बाबू की यह कविता अच्छी लगी थी और मेरा ऐसा ख्याल था कि उपगुप्त तथा वासवदत्ता को लेकर एक अच्छी कहानी बन सकती है। उपगुप्त—एक बौद्ध भिक्षु और वह इतना बड़ा साधक कि वह आगे चलकर अशोक का गुरु बन सके और दूसरी ओर वासवदत्ता—एक नर्तकी। मुझे ऐसा लगा कि इस कहानी में एक उच्च आदर्श होने के साथ अच्छा से अच्छा मानसिक मनोरंजन भी हो सकता है यदि मैं वासवदत्ता के चरित्र को अपने ढंग से विकसित करूँ।

घर आकर मैं कहानी लिखने बैठ गया। वह कहानी कुछ इस प्रकार थी :—

वासवदत्ता मथुरा नगर की एक प्रभावशाली नर्तकी थी। वह मथुरा के राजा की प्रेयसी थी—मथुरा के राजा का नाम था क्षेमेन्द्र। राजा की प्रेयसी होने के कारण वासवदत्ता को महारानी का पद प्राप्त हो गया था इसलिए वह अपनी कला का प्रदर्शन जनता के वास्ते नहीं करती थी। उसकी कला देवता और प्रेमी पर अर्पित हो चुकी थी।

मथुरा में बौद्धों का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ना प्रारम्भ हो गया था। पर प्रमुखता वहां कर्मकाण्ड की ही थी। इस कर्मकाण्ड में शक्ति की उपासना और बलि-प्रदान प्रमुख थे।

महाराज क्षेमेन्द्र, भिक्षु उपगुप्त और श्रेष्ठी धनराज—ये तीनों गुरु-भाई थे। समय के प्रभाव से मथुरा भी नहीं बच सकी और बलि-प्रदान वहां भी राज्याज्ञा द्वारा वर्जित कर दिया गया था।

वासवदत्ता वर्ष में एक बार शक्ति की उपासना करने के लिए मथुरा के प्रमुख मन्दिर में जाती थी। वहां वह दुर्गा की आरती करती थी। उस आरती के समय वह वहां नृत्य भी करती थी। पर देवता के आगे वाला नृत्य जनता के लिए नहीं होता था।

मैंने कहानी का श्रीगणेश वासवदत्ता के जुलूस के साथ किया। मथुरा नगर के राजमार्ग से वासवदत्ता रथारूढ़ होकर मन्दिर की आरती करने के लिए जा रही है। और जब वासवदत्ता की पूजा हो रही है, सौन्दर्य के पुजारियों की भीड़ जमा है तब उसी समय भिक्षु उपगुप्त उसी मार्ग से निकलता है। उपगुप्त के मुख पर तपस्या का तेज है, साधना की श्री है। वासवदत्ता के जुलूस के प्रति वह उदासीन है, उसका काम है लोगों को उपदेश देना। वासवदत्ता को बुरा लगता है—कौन है वह व्यक्ति जो उसकी सुन्दरता की उपेक्षा कर सकता है?

पर उपगुप्त साधारण व्यक्तित्व नहीं है—वासवदत्ता अनजाने ही उसकी ओर आकृष्ट हो जाती है। मन्दिर में जब वह माता की आरती करती है उस समय वह अर्धचेतन अवस्था में उपगुप्त की प्रतिमा अपने सामने देखती है। चेतन और अचेतन के द्वन्द्व के कारण उसकी आरती का थाल उसके हाथ से छूट पड़ता है। आरती का थाल उसके हाथ से छूटना अपशकुन है—शक्ति क्रोधित हो सकती है। वह शक्ति की उपासना करने बैठती है।

अर्ध रात्रि के समय वह मन्दिर से अकेले अपने भवन को लौटती है। उसके हाथ में केवल एक दीपक है—चारों ओर गहरा अन्धकार। और वह मार्ग में किसी चीज से टकराती है। झुक कर वह देखती है—वह उपगुप्त है। और उस समय वह उपगुप्त को अपने यहां आमन्त्रित

करती है। उपगुप्त उसके यहां जाने से इनकार करता है, पर वासवदत्ता को वचन देता है कि एक दिन जब वासवदत्ता को उसकी आवश्यकता होगी वह वासवदत्ता के यहां अवश्य आएगी।

यहाँ से अब कहानी को और आगे बढ़ाना हैं। इस स्थान पर मैंने धनराज के चरित्र की रचना की। धनराज काशी का नगर-सेठ है, उपगुप्त और महाराज क्षेमेन्द्र का गुरुभाई है। धनराज काशी से मथुरा जा रहा है—वासवदत्ता को देखने। धनराज के साथ उसकी पत्नी रंजना भी है। उपगुप्त की धनराज और रंजना के प्रति ममता है—धनराज भी उपगुप्त को अपने भाई की तरह मानता है। उपगुप्त धनराज को सचेत करता है कि वह वासवदत्ता से सावधान रहे।

पर मुझे तो कहानी बढ़ानी है। धनराज मथुरा पहुँच कर वासवदत्ता को देखता है और उस पर मोहित हो जाता है। वह वासवदत्ता को अपना काशी वाला भवन दे देता है जिसमें उपगुप्त कभी-कभी ठहरा करते थे। वासवदत्ता को यह पता था कि उपगुप्त प्रायः काशी में आकर रहते थे—वह उपगुप्त को प्राप्त करने पर कटिबद्ध हो गई। उस भवन का दानपत्र लेकर वासवदत्ता रात के समय ही मथुरा से काशी के लिए जल-मार्ग से चल दी।

काशी में पहुँच कर वासवदत्ता फिर उपगुप्त से मिली—इस बार उसे उपगुप्त का तिरस्कार मिला। और इस तिरस्कार के बाद उसने धनराज से घनिष्ठता स्थापित कर ली। धनराज धन-वैभव में महाराज क्षेमेन्द्र से तो कम न था। और धनराज भी वासवदत्ता के सौन्दर्य-जाल में बुरी तरह फँस गया।

रंजना को अपने पति की यह दुर्दशा असह्य हो गई। वह यह जानती थी कि वासवदत्ता धनराज को नष्ट कर देगी। और अन्त में वह उपगुप्त की शरण में जाती है कि वह वासवदत्ता के चंगुल से

धनराज को छुड़ावे। उपगुप्त रंजना की ममतावश यह करना स्वीकार कर लेता है।

उपगुप्त काशी जाता है। वह धनराज से कहता है कि वासवादत्ता उससे प्रेम नहीं करती। वासवदत्ता मथुरा से काशी उपगुप्त के कारण आई है। धनराज प्रमाण चाहता है और उपगुप्त प्रमाण देता है। वासवदत्ता उपगुप्त के प्रेम में अन्धी सी हो चुकी है, उपगुप्त के लिए प्रमाण देना कठिन नहीं है, लेकिन यह प्रमाण वासवदत्ता से अर्ध सत्य कह कर ही दिया जा सकता है। उपगुप्त यह भी करता है।

और उस समय जब वासवदत्ता यह समझती है कि उसने उपगुप्त को पा लिया—उपगुप्त फिर वहाँ से चल देता है। उस समय वासवदत्ता को यह पता चलता है कि वासवदत्ता के साथ छल हुआ है। उपगुप्त स्पष्ट रूप से तो इस छल का दोषी नहीं है, पर गौण रूप से उसमें उसका हाथ अवश्य है और एकाएक वासवदत्ता के अन्दर भयानक प्रतिहिंसा से भरी घृणा की प्रतिक्रिया होती है।

वासवदत्ता मथुरा लौटती है। उपगुप्त के कारण वह बौद्धों की शत्रु बन जाती है। वह बलि-प्रदान को फिर से आरम्भ करवाती है। जनता में एक प्रकार की अशान्ति-सी फैलती है, लेकिन वासवदत्ता बौद्धों के विनाश पर तुल गई है। यहाँ तक कि वह बौद्ध भिक्षुओं की नर-बलि की तैयारी करती है।

इस ख़बर से जनता में विद्रोह उठ खड़ा होता है। नर-बलि होने के पहले ही जनता मन्दिर में पहुँच कर वासवदत्ता पर टूट पड़ती है। वासवदत्ता को जनता अधमरी करके उसके शरीर को नगर के बाहर फेंक देती है।

और उस समय उपगुप्त वहाँ आता है। वह वासवदत्ता के घावों पर पट्टी करता है—उसे जल पिलाता है। वासवदत्ता जब उससे कहती

है कि वह क्यों आया है तब उपगुप्त उत्तर देता है, "आज तुम्हें मेरी आवश्यकता है।"

इस प्रकार यह कहानी पूरी हो जाती है।

२

मैंने यह कहानी चित्रालेख में लिखी है।

यहाँ स्वाभाविक रूप से मुझे चित्रालेख की व्याख्या करनी पड़ेगी।

चित्रालेख का अर्थ है—चित्र का आलेख। अर्थात् चित्र को शब्दों में व्यक्त कर देना। उन शब्दों के आधार पर दूसरे लोग उस चित्र को बना सकें।

चित्रालेख लिखने के समय तीन चीज़ों का ध्यान रखना पड़ता है, वे यह हैं :—

१ : अभिनय
२ : चित्रांकन
३ : संवाद और ध्वनि

मैंने अभिनय को जो प्रथम स्थान दिया है उसका कारण यह है कि फ़िल्म नाटक का ही तो एक रूप है—और नाटक का प्राण है अभिनय। इस अभिनय में कहानी, चरित्र-चित्रण सभी कुछ आ जाता है। यही अभिनय यन्त्रों द्वारा बने चित्रों में कला के प्राण को स्थापना करता है।

अभिनय से कहानी का सम्बन्ध है और इसलिए चित्रालेख-लेखक को कहानीकार तो होना ही चाहिए। कहानी कहना स्वयं में एक कला है। कहानी की सफलता उसके विषय एवं घटना वैचित्र्य पर जितनी है उससे अधिक वह कहानी कहने की शैली पर है। चित्रालेख-लेखन भी कहानी कहने की एक शैली है।

अभिनय की भांति ही महत्वपूर्ण चीज़ है चित्रांकन। शैली स्वयं में माध्यम है। चित्रालेख-लेखक में चित्रांकन कला का ज्ञान होना नितान्त

आवश्यक है। अच्छी कहानी यदि ठीक तरह से चित्रित नहीं है तो प्रभावहीन होगी। चित्रण में "कैसे चित्रण किया जाय?" से अधिक महत्वपूर्ण चीज है "क्या चित्रित किया जाय?" कैमरा मैन का काम तो केवल "कैसे चित्रित किया जाय?" तक है, "क्या चित्रित किया जाय?—यह प्रश्न चित्रालेख-लेखक के सामने है। चित्र की सफलता "क्या चित्रित किया गया है?" इस पर अधिक है।

अभिनय के बाद संवाद और ध्वनि आते हैं। नाटक में कथनोपकथन महत्वपूर्ण होते हैं—भावना का उतार-चढ़ाव इस कथनोपकथन पर बहुत कुछ निर्भर रहता है। संवाद ऐसे होने चाहिएँ जो तत्काल दर्शक पर प्रभाव डालें, उन संवादों का व्यक्तित्व कवित्व कान का कवित्व है, मस्तिष्क का कवित्व उतना नहीं है। इसी ध्वनि में संगीत भी आ जाता है।

२

वासवदत्ता एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो अत्यन्त रूपवती है। उसे अपने रूप का ज्ञान है—और उससे भी अधिक उसे अपने रूप पर विश्वास है और गर्व है।

वासवदत्ता के रूप के प्रदर्शन को इस कहानी में प्रमुखता मिलनी चाहिए। साथ ही वासवदत्ता में जो रूप का विश्वास और गर्व है—वह वासवदत्ता का व्यक्तित्व है, और वहीं अभिनय की भी आवश्यकता पड़ती है। इस रूपगर्विता के पास एक भयानक अहम् है, वही अहम् तो वासवदत्ता के नाटक की रचना करता है।

इन दो बातों को लेकर ही इस चित्रालेख का प्रथम दृश्य चलता है। रूप का गर्व वहाँ है जहाँ रूप की उपासना है। एक जुलूस निकलता है रूप की रानी वासवदत्ता का। रथ पर सवार वासवदत्ता स्वयं अपने रथ का संचालन कर रही है। जन—समूह उसके रूप के

दर्शनों के लिए उमड़ा पड़ता है। हर तरफ़ उसकी जय-जयकार होती है।

जहाँ रूप की उपासना है, वहाँ रूप की उपेक्षा भी होनी ही चाहिए यह रूप की उपेक्षा साधना और ज्ञान द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। भिक्षु उपगुप्त उसी साधना और ज्ञान का प्रतीक है। वह बौद्ध भिक्षु अहिंसा, दया, प्रेम का पुजारी है, अवनति को प्राप्त होते हुए उस समय के समाज को पुनः जीवन-दान देना उसका एकमात्र इष्ट है। मांस, मदिरा और मैथुन की ग़लत मान्यताओं के उस समाज में वह संयम, भावना और प्रेम की नवीन मान्यताओं को स्थापित करने के लिए घूम रहा है।

उपगुप्त युवा है, उपगुप्त सुन्दर है। जहाँ तक उपगुप्त के कुल और समाज का प्रश्न है, वहाँ इतिहास मौन है। जो कुछ सामग्री बौद्ध-ग्रन्थों में प्राप्त है वह प्रमाणित नहीं है। इसलिए मैंने उपगुप्त के कुल और समाज के सम्बन्ध में कल्पना से काम लिया है। मैंने उपगुप्त को कुलीन दिखलाया है, वह इतना कुलीन है कि वह मथुरा के राजकुमार का और काशी के श्रेष्ठी-पुत्र का गुरुभाई हो सकता है। उपगुप्त को क्षेमेन्द्र और धनराज का गुरुभाई दिखलाने से नाटकीयता में अभिवृद्धि होती है।

पर यह कहानी वासवदत्ता की है, उपगुप्त की नहीं है। इसलिए इस कहानी का नायक उपगुप्त तो है पर वह चित्र में केवल इतना आता है जितने की वासवदत्ता की कहानी के विकास में आवश्यकता है। वासवदत्ता के नित्य के जीवन में उपगुप्त का कोई स्थान नहीं, और उपगुप्त के दैनिक जीवन में वासवदत्ता नहीं आती। महाराज क्षेमेन्द्र और नगरसेठ वासवदत्ता के दैनिक जीवन से सम्बद्ध हैं, उपगुप्त केवल एक प्रेरक शक्ति है। पर भावना के क्षेत्र में यह कहानी उपगुप्त

की कहानी है क्योंकि उपगुप्त की प्रेरक शक्ति ही तो उस युग की मान्यताओं की प्रतीक वासवदत्ता के संघर्ष में आती है।

इस कहानी में मैंने शक्ति का मन्दिर दिखाया है और बलि-प्रदान भी दिखाया है। अशोक के समय में क्या शक्ति के मन्दिर बन चुके थे, इस पर मुझे सन्देह हैं। हाँ, बलि-प्रदान होता था, पर वह बलि-प्रदान यज्ञों का भाग था, शक्ति की उपासना के मन्दिरों का भाग न था— मैं कुछ ऐसा समझता हूँ। पर फिर भी मैंने शक्ति का मन्दिर दिखलाया है, बलि-प्रदान को प्रतिपादित करने के लिए। इस मन्दिर से और बलि-प्रदान से भी कहानी के विकास में सहायता मिली है, इसी से मुझे यह करना पड़ा है।

और यहाँ मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि यह कहानी ऐतिहासिक नहीं है, इसलिए इतिहास की खोज-बीन भी मैंने नहीं की। इस कहानी को मैं एक काव्य कह सकता हूँ।

विस्तार से इस कहानी के सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, कहानी चित्रालेख में मौजूद है। हाँ, दो और चरित्रों के सम्बन्ध में मैं कुछ कहना आवश्यक समझता हूँ, ये हैं सोमदत्त और मारुति। ये दोनों ही चरित्र हास्य की अभिवृद्धि करते हैं, इसलिए इनकी रचना की अवश्यकता पड़ी।

मारुति भोला-भाला आदमी है, कुछ थोड़ा सा बुद्धिहीन। पर वह श्रेष्ठीवंश का है, इसलिए उसमें उच्च संस्कार हैं। सोमदत्त का सामाजिक स्तर नीचा है, उसके संस्कार भी वैसे हैं। पर ये दोनों चरित्र केवल हास्य की अभिवृद्धि के लिए हैं। मारुति कहानी के विकास में कुछ सहायक होता है, सोमदत्त की कहानी के विकास में आवश्यकता नहीं है। वह केवल चित्र को अधिक आकर्षक बनाने लिए ही है।

४

वासवदत्ता की समस्त कहानी का चित्र बनाने के लिए २१ सेटों की आवश्यकता है। आम तौर से सेट से मतलब उन दृश्यों से है जो स्टुडियों में बनाये जाते हैं और जहाँ अभिनय होता है। पर यहाँ जो मैंने २१ सेटों का ज़िक्र किया है उनमें वे बाहरी दृश्य भी सम्मिलित हैं जिन्हें स्टुडियो में बनाना आवश्यक नहीं है।

मैं इन २१ सेटों को समझाने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

प्रथम सेट : एक राजमार्ग का है जहाँ वासवदत्ता की सवारी निकलती है। इस सेट का निर्माण करना पड़ेगा। एक बार जब यह सेट बन गया तब इस सेट पर अर्थात् उस विशेष राजमार्ग पर जितने दृश्य होते हैं उन सबों के चित्र खींच लेने पड़ेंगे। इस चित्रालेख से पता चल जायगा कि इस सेट पर चार दृश्य आते हैं—१, २, ३ और ८३। इन चार दृश्यों का चित्रांकन करने के बाद यह सेट तोड़ दिया जायगा।

दूसरा सेट : एक विशाल मन्दिर के बाहरी भाग का है। इसमें मन्दिर के सामने वाला प्रांगण है, मन्दिर की सीढ़ियाँ हैं और मन्दिर का प्रवेश-द्वार है। इस सेट पर दृश्य ४, ७६, ८६ और ८८ आते हैं।

तीसरा सेट : मन्दिर के भीतरी भाग का है। इस सेट पर दृश्य ५, ६, ७७, ८२, ८५, ८७, और ८६ आते हैं।

चौथा सेट : एक मार्ग का है जहां, वासवदत्ता प्रथम बार उपगुप्त से मिलती है इसमें केवल दृश्य ७ आता है।

पाचवां सेट : एक मार्ग के किनारे एक मैदान का है जहां धनराज के शिविर गड़े हैं। इस सेट पर दृश्य ८, १० और १२ आते हैं।

छठा सेट : धनराज के शिविर का भीतरी भाग है। इस सेट पर दृश्य ६, ११ और १३ आते हैं।

सातवाँ सेट : वासवदत्ता के भवन का है। यह सेट अलग-अलग भागों में बनाया जा सकता है, या एक सम्पूर्ण सेट बनाया जा सकता है। सम्पूर्ण सेट एक साथ बनने से चित्र की सुन्दरता निखर जायगी। इस सेट पर दृश्य १४, १५, १६, २३, २४, २७ और २८ आते हैं।

आठवाँ सेट : महाराज क्षेमेन्द्र के नृत्य-भवन का है। इस पर केवल दृश्य १६ आता है।

नवाँ सेट : महाराज क्षेमेन्द्र के भवन का है। इस पर दृश्य १७, २०, ७८ और ८० आते हैं।

दसवाँ सेट : वासवदत्ता के भवन के बाहरी भाग और उद्यान-मार्ग का है। इस पर दृश्य १८ और २६ आते हैं।

ग्यारहवाँ सेट : महराज क्षेमेन्द के अतिथिगृह का है। इस पर दृश्य २०, २१, २२ और २६ आते हैं।

बारहवाँ सेट : नदी तट का है। यह सेट कृत्रिम नहीं बन सकता, किसी नदी के तट पर जाकर ही इस सेट के दृश्य लेने पड़ेंगे। इसमें दृश्य २५, ३१, ३३ और ४२ आते हैं।

तेरहवाँ सेट : काशी में वासवदत्ता के भवन के बाहरी भाग का है। इसमें धनराज के भवन का उद्यान-मार्ग है, उस कुटी का बाहरी भाग है जिसमें उपगुप्त रहता है। यह सेट काफ़ी बड़ा है। इस पर दृश्य ३२, ३४, ४४, ४८, ५१ और ७३ आते हैं।

चौदहवाँ सेट : उपगुप्त की कुटी का भीतरी भाग। इसमें केवल एक दृश्य है—३५।

पन्द्रहवाँ सेट : वासवदत्ता के काशी वाले निवास-स्थान का भीतरी भाग। यह सेट भी सातवें सेट की भांति बड़ा सेट है। इस सेट पर दृश्य ३६, ३७, ३८, ३६, ४०, ४१, ४३, ४५, ४६, ४७, ४६, ५०, ५२, ५३, ५४, ५५, ५७, ५८, ५६, ६४, ७२, और ७५ आते हैं।

सोलहवां सेट : धनराज का भवन। यह सेट भी सातवें सेट की भाँति बड़ा सेट है। इस पर दृश्य ५६, ६०, ६२, ६५, ६६ और ७४ आते हैं।

सत्रहवां सेट : बौद्ध-बिहार का बाहरी भाग। एक मैदान और उसमें बिहार का प्रवेश द्वार तथा बाहर का भवन है। इस पर दृश्य ६७ और ७० आते हैं।

अठारहवां सेट : बौद्ध-बिहार का भीतरी प्रांगण और पूजा-गृह। इस पर दृश्य ६८, ६६ और ७१ आते हैं।

उन्नीसवां सेट : एक मैदान। इस पर ८४ दृश्य आता है।

बीसवां सेट : नगर की प्राचीर और राजमार्ग। इस पर दृश्य ६० आता है।

इक्कीसवां सेट : प्राचीर का बहिर्भाग। इस पर दृश्य ६१ आता है।

इस प्रकार यह समस्त कहानी २१ सेटों में आती है।

५

यह चित्र नहीं बन सका। क्यों नहीं बन सका, इस पर कुछ कहना व्यर्थ है। इस पर काम प्रारम्भ हो चुका था, जहाँ तक मुझे पता है कुछ थोड़ा-सा भाग इसका बना भी था। पर यह सब तो अब विगत की बात है।

वासवदत्ता का चित्रालेख मेरे पास पड़ा था। एक दिन पुराने कागज़ों में मुझे वह मिल गया और मैं उसे आदि से अन्त तक पढ़ गया। मुझे ऐसा लगा कि यह कहानी हमेशा के लिए नई है क्योंकि जिन मानवीय भावनाओं की क्रिया और प्रतिक्रिया का मैंने अंकन किया है वे शाश्वत हैं। इस कहानी पर एक उपन्यास लिखने की भी मेरे कुछ मित्रों ने मुझे सलाह दी थी, पर मैंने यह उचित नहीं समझा कि

मैं इस कहानी को लेकर उपन्यास लिखूँ, उपन्यास लिखने की प्रेरणा भी तो मुझमें नहीं थी।

इस चित्रालेख को प्रकाशित कर रहा हूँ। स्वयं में यह कहानी रोचक है, चाहे वह उपन्यास के रूप में हो, चाहे वह चित्रालेख के रूप में हो। हाँ, चित्रालेख के रूप में वह इतनी रोचक नहीं होगी जितनी उपन्यास के रूप में क्योंकि चित्रालेख जनता की समझ में तभी पूरी तौर से आ सकता है जब उसका चित्र बन जाय।

मैं जो इस चित्रालेख को प्रकाशित करवा रहा हूँ उसका दूसरा ही कारण है।

भारतीय-फ़िल्म-जगत् में जो चीज़ अत्यन्त महत्व की है और जिसकी अधिक से अधिक उपेक्षा की जाती है वह चित्रालेख है। शायद इसका कारण यह है कि चित्रालेख-लेखन की कला के अध्ययन का यहाँ कोई साधन नहीं, विधिवत् उसका अध्ययन होता ही नहीं। मैंने भारतीय फ़िल्मों की दुनिया बहुत निकट से देखी है, कहीं भी चित्रालेख-लेखन का कोई विधान नहीं है। कभी-कभी तो चित्रांकन बिना चित्रालेख के ही प्रारम्भ कर दिया जाता है। चित्रांकन के समय चित्र का चित्रालेख एवं संवाद लिखे जाते हैं। और इसका परिणाम यह होता है कि चित्र बन जाने के बाद उसकी बुरी तरह काँट छाँट करनी पड़ती है।

फ़िल्म हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण भाग बन गया है, और बहुत लोगों की फ़िल्मी दुनिया में अभिरुचि है। पर हिन्दी में फ़िल्मों पर कोई पुस्तक नहीं है, नवागन्तुक फ़िल्मी दुनिया में जाकर अपने को खो देता है।

इस पुस्तक के पढ़ने से पाठक को फ़िल्मी दुनिया की कार्य-प्रणाली एवं वहाँ की गति-विधि का कुछ ज्ञान हो जायगा। साथ ही इस पुस्तक के सहारे वह चित्रालेख के व्याकरण को भी समझने में सफल हो सकेगा।

आज की फ़िल्मी दुनिया के सम्बन्ध में मैंने जो अपने विचार प्रकट किये हैं, कुछ लोगों को उनसे मतभेद हो सकता है, पर मैं आशा करता हूँ कि फिल्मी दुनिया इन विचारों पर गम्भीरता-पूर्वक सोचेगी। मैंने कला के शाश्वत सिद्धान्तों को लेकर फ़िल्मी-दुनिया का विश्लेषण किया है। जिन मान्यताओं को मैंने प्रतिपादित किया है, वह एकबारगी सब की सब तो आजकी फ़िल्मी दुनिया में कार्यान्वित नहीं की जा सकतीं, क्योंकि वहाँ की वर्तमान मान्यताएँ इनके बिल्कुल विपरीत हैं, पर यदि ये मान्यताएँ सिद्धान्त-रूप में स्वीकृत हो जाएँ तो धीरे-धीरे ये कार्यान्वित भी हो सकेंगी।

भूमिका

भूमिका

परिस्थितियों से शासित और संचालित अपने छोटे-से जीवन में मुझे बहुत कुछ देखना पड़ा है, और मैं कह सकता हूँ कि मेरे अन्दर उन परिस्थितियों के प्रति कोई कटुता नहीं है। यह बहुत कुछ देखना ही तो जीवन की सार्थकता है। जो पाना चाहता था वह मैं न पा सका, और सोच रहा हूँ कि यह अच्छा ही हुआ। यदि वह मिल गया होता तो शायद आज जहाँ हूँ वहाँ मैं न पहुँच सका होता। कम से कम मुझे तो अपने से असन्तोष नहीं है—आज भी मेरे अन्दर अतृप्ति है, आगे बढ़ने की अभिलाषा है। विकास का क्रम अवरुद्ध नहीं हुआ है—मैं चलता जा रहा हूँ।

किन-किन संघर्षों से मुझे गुज़रना पड़ा है उन सबके कहने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं, इतना बतला देना काफ़ी होगा कि सन् १९४२ में मुझे बम्बई के फ़िल्म क्षेत्र में बरबस आना पड़ा। इसके पहले भी कलकत्ता के फ़िल्म कार्पोरेशन में मैंने एक साल काम करके उस क्षेत्र को छोड़ दिया था। लेकिन कलकत्ता के फ़िल्मी-जीवन में मेरे हाथ कुछ लगा नहीं। फ़िल्म कार्पोरेशन एक नई कम्पनी थी—वहाँ अधिकांश काम करने वाले नौसिखिये थे, और उन नौसिखियों से कुछ सीख सकना असम्भव था।

मैं बम्बई की उन दिनों सबसे अधिक प्रसिद्ध फ़िल्म कम्पनी में संवाद लेखक के रूप में गया। बाम्बे टाकीज़ की उन दिनों धूम थी, कंगन, बन्धन, नया संसार, झूला आदि अनेक सफल चित्र उन्होंने बनाए थे। जाते ही मुझे 'क़िस्मत' के संवाद लिखने का काम सौंपा गया। क़िस्मत

में तीन आदमी संवाद लिख रहे थे—यह संवाद लिखने का काम मिल-जुल कर होता था। जब चित्र में संवाद-लेखक के रूप में मेरा नाम देने का प्रश्न उठा उस समय मैंने अपना नाम वापस ले लिया क्योंकि मैं संयुक्त संवाद-लेखकों में अपना नाम नहीं देना चाहता था। संवाद-लेखक की हैसियत से ख्याति प्राप्त करने के लिए मैंने फ़िल्मी दुनिया में प्रवेश नहीं किया था, मैं तो आर्थिक संकट से छुटकारा पाने के लिए वहाँ गया था।

मैंने बम्बई की फ़िल्मी दुनिया में छः वर्ष बिताए। संवाद-लेखक से बढ़ कर मैं सिनीरियो-लेखक बना, और उसके बाद मेरे निर्माता बनने का अवसर था। बाम्बे टाकीज़ में डाइरेक्टर का स्थान बहुत छोटा होता था, प्रोड्यूसर अथवा निर्माता ही सब कुछ हुआ करता था, और उस निर्माता को पहले सिनीरियो लेखक होना पड़ता था। निर्देशन का अधिकांश भाग सिनीरियो अथवा चित्रालेख-लेखक को करना पड़ता था।

फ़िल्म की दुनिया में कहानी को बहुत नीचा स्थान दिया जाता है, और मैंने इसी बात को लेकर बम्बई से लौटते समय यह कह दिया था कि फ़िल्म व्यवसाय की मृत्यु अवश्यम्भावी है अगर लगातार फ़िल्मों में कहानी की अवज्ञा की गयी। मैंने बाम्बे टाकीज़ भी इसीलिए छोड़ी कि वहां वाले कहानी को कोई महत्व देने को तैयार न थे। मेरी एक कहानी को स्वीकार करके लोगों ने उसे मुझसे इतना बदलवाया कि अन्त में मैं यह कह ही न सकता था कि वह मेरी कहानी है। उस कहानी के लेखक के रूप में मेरा ही नाम आया था और वह चित्र असफल रहा था।

बम्बई के फ़िल्मी-क्षेत्र के जीवन में मुझे बड़े विचित्र अनुभव हुए, और उन अनुभवों से मैंने बहुत कुछ सीखा है। जिन लोगों के हाथ में शक्ति है, सत्ता है—उनमें अधिकांश ऐसे हैं जो सफल नहीं कहे जा सकते। लोग आते हैं, आकस्मिक सफलता उन्हें प्राप्त होती है और फिर धीरे-धीरे मिटते जाते हैं। न जाने कब से फ़िल्मी दुनिया में यह होता रहा है,

और जहाँ तक मुझे दिखता है, एक लम्बी अवधि तक यह होता रहेगा।

२

फ़िल्म की कहानी उस साहित्यिक कहानी से भिन्न होती है जो हमें पढ़ने को मिलती है। साहित्यिक कहानी में कहानीकार जो कहता है वह शब्दों के माध्यम से पाठक के पास पहुंचता है। इन शब्दों को ग्रहण करता है मस्तिष्क। यह आवश्यक नहीं है कि अपनी कहानी में जो चित्र लेखक खींचना चाहता है वह चित्र पाठक तक पहुँच जाय, अपनी कल्पना और अपनी बुद्धि के अनुसार पाठक के सामने वे चित्र अलग-अलग होते हैं। यही साहित्य की शक्ति और एक तरह से निर्बलता भी है।

फ़िल्म की कहानी मस्तिष्क ग्रहण करता है आंख और कान द्वारा। हम चित्रपट पर चरित्रों को देखते हैं—उनकी बातें सुनते हैं। प्रकृति के दृश्य, राजवैभव, सुन्दर स्त्री पुरुष-सभी हमारे सामने आते हैं। वे बोलते हैं—उनके संवादों में रस होता है।

जो साहित्यकार फ़िल्मों की आवश्यकता का अनुभव नहीं करते वे फ़िल्मी कहानी लिखने में सफल नहीं हो सकते—मैं यह स्वीकार करता हूँ। फ़िल्मी कहानी को हमारे कान और आंख पहले ग्रहण करते हैं। इसलिए फ़िल्मी कहानी वही सफल हो सकती है जो आंख और कान को तृप्त कर सके। फ़िल्मी कहानी में नायक, नायिका के रूप में सुन्दर स सुन्दर तारिकाओ की आवश्यकता पड़ती है। चरित्रों के वस्त्र सुन्दर होने चाहिए। जिन मकानों में वे रहते हैं अथवा जिन स्थानों में घटनाएं होती हैं उन मकानों एवं स्थानों को आकर्षक होना चाहिए। प्रकृति के अच्छे से अच्छे दृश्य उपस्थित किये जाते हैं जिससे आंखों को सुख मिल सके। और फलस्वरूप फ़िल्मी कहानी का एक बड़ा भाग इन दृश्यों को प्रधानता देने में समर्पित होता है।

यही बात कानों की तृप्ति पर भी लागू होती है। फ़िल्म में कभी-कभी जो संवाद बोले जाते हैं अगर उन्हें काग़ज पर लिख कर पढ़ा जाय तो हंसी आजाएगी क्योंकि उस समय मस्तिष्क को काम करने का मौक़ा मिल जायगा। पर वही संवाद जब फ़िल्म के चरित्र बोलते हैं तो लोग फड़क उठते हैं और वाह-वाह करने लगते हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि वे संवाद कर्ण-प्रिय होते हैं। उनका मस्तिष्क से कोई सम्बन्ध नहीं।

भारतीय फ़िल्मों में संगीत की जो परिपाटी चल पड़ी है उसका भी एकमात्र कारण है कानों की तृप्ति की भावना। कहानी के साथ संगीत का सम्बन्ध वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत शिथिल होता है, लेकिन आज के दिन बिना संगीत की फ़िल्मी कहानी बनाने का कोई भारतीय फ़िल्म निर्माता साहस नहीं कर सकता। मैं यह नहीं कहता कि भारतीय फ़िल्म-निर्माताओं की यह धारणा सर्वथा सही है, मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि यह धारणा ग़लत है। एक अच्छी फ़िल्मी कहानी में जो बीच-बीच में निरर्थक गाने डाल दिए जाते हैं उससे फ़िल्म को सफलता के स्थान पर असफलता ही मिलती है। पर यह भी सत्य है कि गानों से कई फ़िल्मी कहानियों को बहुत बल मिला है और आगे भी यह बल मिलता रहेगा। संगीत और कहानी के सम्बन्ध पर मैं आगे चल कर प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगा, इस स्थान पर तो मैंने मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रतिपादित करने के लिए ही यह बात कही है।

आज के वैज्ञानिक युग में फ़िल्मों में निरन्तर नए-नए विकास हो रहे हैं पर ये जितने भी विकास हैं, ये आंख और कान की तृप्ति के ही विकास हैं।

३

फ़िल्मी कहानी पर कुछ स्पष्ट रूप से लिखने के पहले मैं कला के

सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर देना चाहता हूँ क्योंकि फ़िल्म को मैं कला का एक वैसा ही रूप मानता हूँ जैसा नाटक है।

कला के दो भाग होते हैं—रूप और भावना। जिस प्रकार शरीर और प्राण के योग से मनुष्य स्थित है, उसी प्रकार रूप और भावना के योग से ही कला का अस्तित्व है। रूप में सौन्दर्य भावना ही का है, जहाँ भावना नहीं है वहाँ रूप की कोई सार्थकता नहीं।

कोई भी कलाकृति जहाँ भावना शिथिल है, निर्जीव होगी, उसका रूप कितना भी सुन्दर बना दिया जाय। उसी प्रकार कोई भी भावना यदि वह सुन्दर रूप में नहीं प्रकट की जाती है, प्रभाव-रहित होगी। सफल कलाकृति में रूप और भावना का सन्तुलन होना आवश्यक है। दुनिया में कलाकृति के नाम पर अधिकांश में जो आता है वह रूप भर है, भावना का उसमें नितान्त अभाव है। इस रूप को हम कला का शरीर या व्याकरण या और भी कोई दूसरा नाम दे सकते हैं, और यह जितना भी सुन्दर बनाया जा सके, कलाकृति उतनी सुन्दर बनेगी—यह भी सत्य है, पर कला में भावना का प्राण होना नितान्त आवश्यक है।

और इसीलिए कलाकृति को जन्म देने के लिए कलाकार की आवश्यकता पड़ती है। वे जो केवल रूप, व्याकरण या शरीर की रचना के बल पर सफल कलाकृति की रचना का दावा करते हैं, असफल होंगे। उनकी एकाध कृति भले ही सफल हो जाय, पर वह सफल कृति कलाकृति नहीं है, वह सफल कृति किसी भी चीज़ का सुन्दर प्रदर्शन कहा जा सकता है। प्रदर्शन का मानव जीवन में एक स्थान है—पर प्रदर्शन कला नहीं है।

भारतवर्ष में और विशेषतः उत्तर भारत में इस रूप एवं व्याकरण के प्रदर्शन को कला मानने की परम्परा चल पड़ी है। नृत्य में, संगीत में, कविता में...सभी जगह यह भ्रान्त धारणा मिलेगी। गवैयों के कुल हैं और उनके कुल की गायकी है। नृत्य के बोल हैं जिन पर पैर थिरकते

हैं। कविता में छन्द, अलंकार और नायिका भेद हैं। इन सबों में लोग मेहनत करते हैं; वर्षों यह सब सीखते हैं। और इसी को कला कहा जाता है। कला की इसी भ्रामक धारणा के कारण कला जन-जीवन से दूर होती जा रही है। केवल प्रदर्शन को कला का नाम दे देने से तो काम नहीं चलेगा। हमें कला को समझ कर उसे आगे बढ़ाना होगा।

फ़िल्मी दुनिया में भी प्रदर्शन को कला समझने की भ्रान्त धारणा फैली हुई है। आज जो फ़िल्म बन रहे हैं उनमें बेतहाशा ख़र्च हो रहा है। अभी कुछ दिनों पहले तक...और मैं तो कहूँगा कि आज भी... श्रेष्ठ तारक-तारिकाओं को एक-एक चित्र के लिए पचास हज़ार से लेकर डेढ़ लाख रुपये तक दिए जा रहे हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि तारक-तारिकाओं के प्रदर्शन में फ़िल्म की सफलता है। मुझे कुछ ऐसे अभिनेताओं के सम्बन्ध में थोड़ा बहुत ज्ञान है जो एक साथ दस बारह चित्रों में अभिनय कर रहे हैं। संगीत की स्थिति कुछ इससे अच्छी नहीं है। संगीत निर्देशकों में कुछ लोग तो एक-एक चित्र के लिए एक लाख रुपया तक ले लेते हैं। इसके साथ अभी हाल में मुझे यह भी पता चला है कि इन संगीत निर्देशकों की सलाह से कहानी में हेर-फेर भी किया जाता है जिससे इनके संगीत को कहानी में प्रमुखता मिल सके।

सजावट को तो फ़िल्म में इतना महत्त्व दिया जा रहा है कि सेटों पर लाखों रुपये पानी की तरह बहा दिए जाते हैं। एक ग़रीब आदमी का कमरा भी जो चलचित्रों में दिखेगा वह शानदार रईस के कमरे को मात कर सकता है। उसमें क़ीमती सामान मिलेगा, उसमें अति आधुनिक सजावट दिखेगी। नायिका बरतन भी मांजेगी तो रेशम की साड़ी पहन कर। जहाँ तक मुझे पता है, इधर पिछले कई वर्षों में एक-एक लाख रुपये के सेट बने हैं। दृश्य दिखाने के लिए यहां से कलाकार, कैमरामैन, साउंड इंजीनियर तथा अन्य कर्मचारी विदेश जाते हैं। वनों, पर्वतों

तथा अन्य विभिन्न नगरों के चित्र खींचने पर हज़ारों रुपया ख़र्च हो जाता है।

यह प्रदर्शन वाले चित्र कभी-कभी अपने प्रदर्शन के कारण सफल भी हो जाते हैं, पर इसके यह अर्थ नहीं कि प्रदर्शन कला है, और इन प्रदर्शन के चित्रों को हमेशा सफलता मिलेगी ही। इधर तो प्रदर्शन वाले चित्र अच्छी कहानी न होने के कारण लगातार असफल होते गए हैं। प्रदर्शन कला नहीं है...प्रदर्शन कला का रूप भर कहला सकता है।

४

हम जब किसी भी फ़िल्म को देखने जाते हैं तब हम क्या फ़ोटोग्राफ़ी देखने जाते हैं? क्या हम गाना सुनने जाते हैं? क्या हम कहानी देखने जाते हैं?

जहाँ तक फ़ोटोग्राफ़ी का सवाल है वहाँ अच्छी से अच्छी फ़ोटोग्राफ़ी के आकर्षण की एक सीमा होती है। वह फ़ोटोग्राफ़ी देखना हमारे दैनिक मनोरंजन का भाग नहीं बन सकता। केवल फ़ोटोग्राफ़ी में रुचि भी बहुत कम लोगों की है।

संगीत स्वयम् में जनता के मनोरंजन की चीज़ है। पर संगीत सुनने के लिए फ़िल्म देखने कोई नहीं जाता। हाँ, कुछ फ़िल्मों के एक-आध गाने सुनने के लिए कुछ लोगों ने कई-कई बार वह फ़िल्म देखी है। पर यह तो नियम का अपवाद ही कहा जा सकता है। इन फ़िल्मी गानों के ग्रामोफ़ोन रिकार्ड भी मिलते हैं, और हल्के-फुल्के गानों के प्रेमी इन रिकार्डों को अक्सर अपने घरों पर सुना भी करते हैं।

फ़िल्म में हम वस्तुतः कहानी देखने जाते हैं। कहानी सुनने की प्रवृत्ति मानव समाज की आदि प्रवृत्ति है और कहानी से ही मानव सर्वश्रेष्ठ और सबसे अधिक मनोरंजन प्राप्त कर सकता है, यह एक वैज्ञानिक सत्य है। कहानी मानव जीवन का चित्र है। जीवन में गति है, कर्म है।

और इसी गति एवं कर्म में भावना है। प्रदर्शनों में गति एवं कर्म का अभाव है, या यह कहना अधिक उचित होगा कि जो गति और कर्म प्रदर्शन में मिलते हैं वे वैज्ञानिक नियमों से बंधे हैं, उनमें भावना नहीं है।

वैसे कहानियों में भी प्रदर्शन हो सकता है, और होता भी है। आज के अधिकांश कहानी-साहित्य में प्रदर्शन तो है ही। कहानी लिखने के नुस्खे बना लिए गए हैं। नायक, नायिका, खल नायक या खल नायिका...इस त्रिभुज में ही यह अधिकांश कहानियां बंधी होती हैं। इनके क्रमों में अनगिनती हेर-फेर किए जा सकते हैं और इस प्रकार अनगिनती कहानियाँ बन सकती हैं। फ़िल्मों में जो कहानियाँ आती हैं वे इसी नुस्खे पर तैयार होती हैं।

मुझे तो इस नुस्खे वाली कहानियों से कोई आपत्ति नहीं है अगर इस तरह के नुस्खों की कहानियाँ वास्तविक कलाकारों द्वारा तैयार की जाएं। कलाकार में वह संयम होता है जो कहानी को अप्राकृतिक बनने से रोकता है, वह सृजनात्मक प्रतिभा होती है कि इन कृत्रिम नुस्खों में भी जीवन डाल सके।

फ़िल्मी दुनिया में मुसीबत यह है कि वहाँ के सब लोग अपने को कलाकार समझते हैं। वैसे उस दुनिया में कलाकार हैं...यह मैं स्वीकार करता हूँ, लेकिन कलाओं में वर्गीकरण होता है। संगीत में दक्ष आदमी कहानीकार भी होगा...यह ग़लत है। चित्रकला में पारंगत व्यक्ति जब कहानी लिखता है तब मुझे हँसी आ जाती है। कुशल अभिनेता या अभिनेत्री जब कहानीकार से कहानी बदलवाते हैं या स्वयं एक कहानी तैयार करते हैं तब इस फ़िल्मी दुनिया की विडम्बना मेरे सामने खड़ी हो जाती है। और तो और फ़िल्म कम्पनी का मालिक जिससे कला की जन्मजात शत्रुता है, कहानी में ऐसे विचित्र परिवर्तन करा देता है कि

कभी-कभी मुझे बेतहाशा क्रोध आ जाता है। साधारण कोटि के चरित्र-हीन कार्यकर्त्ता उच्च आदर्शों की कहानियाँ लेकर घूमते हुए एक हास्यास्पद दृश्य उपस्थित करते हैं।

पर आज की फ़िल्मी दुनिया में यही सब हो रहा है। मुझे तो वहाँ कभी-कभी ऐसा लगा कि फ़िल्मी दुनिया का हर एक व्यक्ति कहानी लिख सकता है—एक कहानीकार को छोड़ कर। मैंने अपने समय में प्रत्येक फ़िल्म डायरेक्टर को कहानीकार के रूप में देखा है। यहाँ तक कि यह फ़िल्म डायरेक्टर हिन्दी न जानने के कारण अपनी कहानियां अंग्रेज़ी में लिखते थे और हिन्दी लेखक का काम केवल इतना था कि वह उन अंग्रेज़ी में लिखे संवादों का अनुवाद कर दे। फिर इस अनुवाद की भाषा पर भी लेखक का अधिकार न था। अधिकारी लोग भाषा को भी सस्ते क़िस्म की, फ़ाश और निरर्थक बनाने का प्रयत्न करते थे।

आज फ़िल्म की दुनिया में जो अधिकांश कहानियाँ बन रही हैं वे अंग्रेज़ी कहानियों के रूपान्तर भर हैं। पर रूपान्तर में मौलिक अंग्रेज़ी कहानी बिगड़ जाएगी यह निश्चित है। कहानी का वातावरण भारतीय बनाना होगा, भारतीयता के अन्य अवयवों का भी समावेश इन कहानियों में करना पड़ेगा। इस सबका परिणाम यह होता है कि अच्छी से अच्छी अंग्रेज़ी कहानी का रूपान्तर बढ़ा भद्दा और बेतुका हो जाता है। इन अंग्रेज़ी कहानियों के रूपान्तर का मोह जो फ़िल्मी दुनिया में बुरी तरह आ गया है, उसका एकमात्र कारण यह है कि हमारे फ़िल्म व्यवसाय में जो लोग हैं उनमें मौलिकता नहीं है। वे वास्तविक कलाकार नहीं है, और इसी का यह परिणाम है कि हमारे देश का फ़िल्म व्यवसाय प्रायः नष्ट हो रहा है।

मुझसे निर्माताओं ने अक्सर यह माँग की है कि मैं उनके बतलाए हुए विषय पर कहानी लिखूं। उदाहरण के रूप में यदि मध्य वर्ग के पारिवारिक जीवन तथा उसके आन्तरिक संघर्ष पर कोई कहानी सफल

हो गई तो हर एक फ़िल्म निर्माता मध्य वर्ग के पारिवारिक जीवन तथा उसके आन्तरिक संघर्ष की कहानी ढूंढता घूमेगा। उस फ़िल्म की सफलता से उन्होंने जो निष्कर्ष निकाला वह कितना ग़लत है। अपने विषय एवं समस्या के कारण कोई फ़िल्म सफल नहीं होता, फ़िल्म सफल होता है अपनी अच्छी कहानी के कारण। यदि कहानी का अंग-प्रत्यंग सुन्दर है तो वह सफल होती है, उसमें कोई भी विषय हो या समस्या हो। कहानी में मौलिकता और कहानी-कला की ग्राहकता के स्थान पर विषय एवं समस्या को महत्व देना मूर्खता की हद है।

फ़िल्मी दुनिया के वातावरण में पड़ कर कहानीकार भी अपनी कला को छोड़ने पर विवश हो जाता है, और धीरे-धीरे सुविधा के लिए अपनाए जाने वाला सिद्धान्त उस कहानीकार के जीवन का सत्य बन जाता है। यह जानते हुए भी कि फ़िल्मी कहानी में आँख और कान की तृप्ति प्रथम है, हम कहानी के भावात्मक और सृजनात्मक पहलू की उपेक्षा तो नहीं कर सकते। रूप भले ही बदल जाए, रूप की सजावट की परिपाटी भले ही बदल जाय, कहानी में प्राण तो होना ही चाहिए। केवल नये ढंग से और नये रूप वाले मुर्दे गढ़ कर तो हम कला का सृजन नहीं कर सकते।

फ़िल्मी दुनिया में फ़िल्मी कहानी तीन भागों में विभक्त मानी जाती है। सबसे प्रथम होती है कहानी—जो दो या तीन पृष्ठ की होनी चाहिए। इस कहानी में कोई भी सम्पूर्ण घटना हो। इस कहानी में साहित्यिक छटा होने की कोई आवश्यकता नहीं, इसमें चरित्र-चित्रण की कोई आवश्यकता नहीं। एक सादी सी कहानी भर चाहिए। और इसी लिए कम्पनी के मालिक से लेकर कैमरा का कुली तक यह कहानी लिख सकता है।

दूसरा भाग है चित्रालेखा अथवा सिनीरियो का। फ़िल्मी कहानी का यह सब से महत्त्वपूर्ण भाग है। और आम तौर से यह काम फ़िल्म का

निर्देशक स्वयं करता है। चित्रालेख लिखना किसी भी उच्च कोटि के उस साहित्यकार के लिए कठिन नहीं है जिसको फ़िल्म बनाने की क्रिया का पूर्ण ज्ञान हो। लेकिन फ़िल्मों में प्रधानता निर्देशक की रहती है, और वही इस व्यवसाय का परम पिता समझा जाता है, इसलिए साहित्यकारों को चित्रालेख लिखने का काम सौंपा ही नहीं जाता।

फ़िल्मी कहानी का तीसरा भाग है संवाद, जिसे लिखने के लिए हिन्दी के साहित्यकार बुलाए जाते हैं। अधिकांश हिन्दी के सृष्टा साहित्यकार रुपयों के लोभ में संवाद लिखने के लिए फँस जाते हैं। यह संवाद-लेखन कहानी का निम्नतम भाग माना जाता है। जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, सिनीरियो लेखक जो अधिकांश में स्वयं निर्देशक होता है या तो अंग्रेज़ी में या फिर टूटी-फूटी हिन्दी में संवादों का ढांचा तैयार कर देता है। फ़िल्मों में संवाद-लेखकों को पण्डित जी या मुंशी जी के नाम से सम्बोधित करने की जो परम्परा है उसकी तह में संवाद-लेखकों का यही निम्न-स्थान है। निर्देशक के भावों को भाषा दे देना—यह संवाद-लेखक का काम है। फ़िल्मी दुनिया में किसी भी साहित्य-कार का संवाद-लेखक बन कर जाना उसके लिए और साहित्य के लिए अपमानजनक है।

कहानी, चित्रालेख और सवाद के तीन अलग-अलग लेखक होना आज फ़िल्मी दुनिया की सबसे बड़ी कमज़ोरी है। पर मशीन के इस युग में जहां कला का वास्तविक मूल्यांकन बहुत कठिन है इस कमज़ोरी का दूर होना भी मुझे तब तक कुछ असम्भव-सा दिख रहा है जब तक कि इस ओर भगीरथ प्रयत्न न किया जाय। आज जिन लोगों के हाथ में फ़िल्म-व्यवसाय है वे कुपात्र हैं। हमारे यहाँ नाटकों की परम्परा अति प्राचीन है और नाटकों की तथा फ़िल्म की कला में बहुत थोड़ा सा अन्तर है। वस्तुतः फ़िल्म नाटक का ही वैज्ञानिक युग वाला विकसित रूप है। और हम देखते हैं कि जितने अच्छे नाटक हैं वे सबके सब

उच्च कोटि के साहित्यिकों द्वारा लिखे गए हैं। नाटक में कहानी, संवाद, एवं कहानी का मंच पर प्रदर्शन सभी कुछ तो सम्मिलित है। निर्देशक का काम अभिनय से सम्बद्ध है, लेखन से नहीं।

पाश्चात्य देशों में भी जहां यह कहानी, चित्रालेख एवं संवाद का वर्गीकरण किया है, चित्रालेख लिखने के लिए विशिष्ट साहित्यिक ही नियुक्त होते हैं। वहाँ निर्देशक चित्रालेख नहीं लिखा करता। जब मैं बॉम्बे टाकीज़ पहुँचा, मैंने भी वहाँ यह परम्परा पाई कि चित्रालेख-लेखक निर्देशक से अलग हुआ करता था। निर्देशक का काम केवल अभिनय से सम्बद्ध था। पर बॉम्बे टाकीज़ में चित्रालेख-लेखक विशिष्ट साहित्यक नहीं होते थे—हिन्दी के साहित्यिक उन दिनों तक फ़िल्मों में नहीं के बराबर पहुँचे थे।

मेरा मत है कि कहानी, चित्रालेख एवं संवाद का लेखक एक ही होना चाहिए। कहीं-कहीं जब किसी सुविख्यात उपन्यास का चित्र बनना है वहाँ पर नियम टूटेगा ही, पर वहाँ भी चित्रालेख और संवाद के लेखक एक ही होने चाहिए।

फ़िल्म की दुनिया में मुझे अक्सर लोगों से यह सुनने को मिला है कि फ़िल्म का काम टीम का काम है—यानी वह कई लोगों का संयुक्त काम है। कम से कम मैं तो इस कथन से असहमत हूँ। कोई भी रचनात्मक काम दल का काम हो ही नहीं सकता, वह तो केवल एक व्यक्ति का काम होता है। पाश्चात्य देशों में वह आदमी जिस पर फ़िल्म बनाने की जिम्मेदारी होती है, निर्माता अथवा प्रोडयूसर कहलाता है। यह निर्माता शब्द व्यावसायिक 'निर्माता' शब्द से भिन्न है। हमारे यहाँ निर्माता वह है जो फ़िल्म में पैसा लगता है और मालिक होता है। इस व्यावसायिक निर्माता के पास फ़िल्म का ज्ञान होना आवश्यक नहीं है, और वह होता भी नहीं है।

निर्माता का जो पद विशेष रूप से हालीवुड में प्रचलित है और जिसका प्रयोग कुछ दिनों तक बॉम्बे टाकीज़ में किया गया है, उसी को भारतीय फ़िल्म जगत् में स्थापित करना चाहिए। कलाकृतियाँ मिल-जुल कर नहीं निकला करतीं—वहाँ एक आदमी का ही आधिपत्य होता है। इस निर्माता को फ़िल्म के विभिन्न विभागों का सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि यह निर्माता कहानी-लेखक ही हो। इसके साथ अच्छे कहानी-लेखक, चित्रालेख-लेखक के रूप में रह सकते हैं। पर मैं समझता हूँ कि एक अच्छा कहानी लेखक अच्छा निर्माता बन सकेगा।

६

मेरे मत से फ़िल्मी कहानियों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वह कहानियाँ जो केवल कहानी की दृष्टि से सफल हैं। इनमें ख्यातिनामा लेखकों के उपन्यास, नाटक तथा अन्य प्रकार के कथानक आते हैं। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार की कहानियों के न जाने कितने चित्र बन चुके हैं और बन रहे हैं। भारतवर्ष में भी रवीन्द्र नाथ ठाकुर, शरत बाबू के उपन्यासों के चित्र बने हैं, और वे चित्र सफल रहे हैं।

सुविख्यात उपन्यासों का कथानक स्वाभाविक, प्रभावोत्पादक और सुन्दर होता है। उस कथानक में निर्माताओं द्वारा कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। हाँ, चित्रालेख द्वारा इन उपन्यासों के कथानक में काँट-छाँट अवश्य की जाती है क्योंकि कोई भी बड़ा उपन्यास दो ढाई घण्टे के चित्र में सम्पूर्णता में तो नहीं आ सकता। इन उपन्यासों के चित्रों की सफलता चित्रालेख-लेखक पर निर्भर है।

बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि चित्रों के निर्माता चित्र बनाने के लिए उचित उपन्यासों की खोज में रहते हैं। पर जब कोई उपन्यास-

लेखक एक सशक्त कहानी उनके सामने ले जाता है तब वे उस कहानी में परिवर्तन करने की बात चलाते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि किसी भी कथानक का घटनाक्रम एक वैज्ञानिक आधार पर चलता है, और उसमें कहीं भी परिवर्तन करने से वह पूरा कथानक ही बदल जायगा।

यह जो प्रथम कोटि का कथानक है, इसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता। मैंने बम्बई के एक फ़िल्म-निर्माता से कहा था, "भगवान् के नाम पर यदि तुम किसी भी सफल कहानीकार की कोई कहानी चाहते हो तो उसकी कहानी को या तो सम्पूर्ण दृष्टि से स्वीकार कर लो, या उसे लेने से इनकार कर दो। तुम उसमें परिवर्तन की बात मत चलाओ, और न यह सोचो कि तुम उसमें परिवर्तन कर सकोगे। वह सृजनात्मक साहित्य है और इसलिए वह सशक्त साहित्य है।"

दूसरी कोटि की वह कहानियां हैं जो अन्य कई बातों को ध्यान में रखकर लिखवाई जाती हैं। किसी नायक की बड़ी ख्याति है, उस नायक के चरित्र को उभारते हुए यदि कोई कहानी लिखी जाय तो उसमें नायक सफलतापूर्वक अभिनय कर सकेगा।

या फिर जनता में हास्य-रस की बड़ी मांग है। हल्के-फुल्के हास्य-रस की कहानी का ढांचा चार-छः लोग मिल कर तैयार कर लेते हैं, उसमें कैसे फ़िक़रे हों, कौन-कौन सी घटनाएं हों जो लोगों को हंसा सकती हों—यह सब मिल-जुल कर तै कर लिया जाता है।

आन्दोलनों एवं व्यक्तित्व को लेकर भी कहानियाँ तैयार की जाती हैं—और इन कहानियों पर भी कई लोगों द्वारा मिल-जुल कर काम होता है।

प्रथम कोटि की कहानी को मैं सृजनात्मक कहानी कहूँगा, दूसरी कोटि को मैं तैयारी की कहानी कहूँगा। फ़िल्मी दुनिया में इस तैयारी की कहानी को ही प्रधानता मिलती है। वैज्ञानिक दृष्टि से तैयारी की कहानी

की सफलता कठिन है, लेकिन वस्तुस्थिति के अनुसार कई तैयारी की कहानियाँ बड़ी सफल हुई हैं।

जिसे हम तैयारी की कहानी कहते हैं उसकी सफलता निश्चित अथवा अनिवार्य नहीं है। जहाँ तक मेरा अनुभव है, इन तैयारी की कहानियों में पाँच या दस प्रतिशत कहानियाँ ही सफल होती हैं। जनरुचि और जन-भावना समय-समय पर बदलती रहती है और यह कहना कठिन होगा कि किसी भी तैयारी की कहानी को निश्चित रूप से जनता स्वीकार कर लेगी। भारतीय फ़िल्म का इतिहास तो यह बतलाता है कि फ़िल्म-व्यवसाय का अधिकतर रुपया इस तैयारी की कहानी पर बरबाद हुआ है।

जो सृजनात्मक कहानी है उसकी सफलता हर समय और हर परिस्थिति में अनिवार्य है। वह कहानी किसी विशेष फ़ैशन या रुचि को लेकर नहीं लिखी जाती...यह फ़ैशन और रुचि तो अस्थायी हैं...वह कहानी मानव-चरित्र के मूलाधार तत्वों को लेकर लिखी जाती है। पर इस तरह की सृजनात्मक कहानियां जिनके सुन्दर और सुगठित चित्र बन सकें कम हैं। हाँ, इस प्रकार की सृजनात्मक कहानियों के लेखक साहित्य में अवश्य मिल सकते हैं, पर फ़िल्मी दुनिया में कुछ ऐसा व्यतिक्रम है कि इन लेखकों का स्वागत नहीं होता।

"सृजनात्मक कहानी" शब्द से फ़िल्म-व्यवसाय के कुछ लोग चौंक सकते हैं इसलिए मुझे सृजनात्मक कहानी की व्याख्या उनके दृष्टिकोण को सामने रखते हुए कर देनी पड़ेगी। कोई भी कहानी बिना किसी आधार के तो नहीं होती, जीवन के शाश्वत सत्य चरित्रों द्वारा ही प्रकट होते हैं। ये चरित्र...स्त्री, पुरुष...किसी विशेष समाज में रहते हैं, किन्हीं विशेष परिस्थितियों में कार्य करते हैं। युग की परम्पराओं और समस्याओं में ही तो जीवन है।

यह कैसे मान लिया जाय कि युग का कलाकार युग की समस्याओं पर लिखने को प्रेरित न होगा ? वे फ़िल्मी जगत् के महापुरुष जो फ़िल्मों की संकुचित दुनिया में रहते हैं और सोचते हैं, क्या वे ही युग की समस्याओं और संघर्षों के प्रति सजग हैं और वे कलाकार जिनमें युग प्रतिबिम्बित है, जो मानव जीवन की गहराइयों में ही विचरण करते हैं, युग की समस्याओं और संघर्षों के प्रति उदासीन हैं ?

सृजनात्मक कहानियों में युग की समस्यायें और संघर्ष मिलेंगे। किसी उच्च कोटि के कहानीकार से किसी भी विशेष समस्या या संघर्ष पर कहानी लिखवाई जा सकती है, यदि उस कहानीकार के अन्दर इस संघर्ष या समस्या के सम्बन्ध में प्रेरणा है। पर इतना निश्चित है कि कहानीकार जो कहानी लिखेगा उसमें एक संयत और गम्भीर प्रकार की प्रेरणा मिलेगी। सस्ते और भद्दे प्रदर्शन की चीज़ वह न लिखेगा।

इसके ये अर्थ नहीं हैं कि मैं जिन्हें हम तैयारी वाली कहानी कहते हैं, इसका विरोधी हूँ। इस प्रकार की कहानियों का एक क्षेत्र है। लेकिन ऐसी कहानियों का फ़िल्मी दुनिया का नियम न बन कर अपवाद के रूप में ही आना फ़िल्म व्यवसाय के लिए श्रेयस्कर होगा।

७

चित्रालेख-लेखक को चित्र-निर्माण का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। और यह ज्ञान किसी स्टूडियो में काम करके ही प्राप्त किया जा सकता है। फिर भी मैं इन पृष्ठों में चित्र-निर्माण का काम कैसे होता है, उसे बतलाने का प्रयत्न करूंगा। कहानी विभाग के अलावा फ़िल्म के क्षेत्र में ये विभाग होते हैं :

१. कैमरा विभाग

२. साउंड अथवा ध्वनि विभाग

३. कला विभाग। इस विभाग के अन्तर्गत अन्य छोटे-छोटे विभाग आते हैं जो अलग से भी हो सकते हैं।

क. सेटिंग विभाग

ख. वस्त्राभूषण विभाग

ग. सजावट विभाग

घ. मेक अप विभाग

४. संगीत विभाग

५. सम्पादन विभाग

६. लेबारेटरी

७. चित्र प्रदर्शन विभाग

८. प्रोडक्शन विभाग

९. बिजली या प्रकाश विभाग

१०. निर्देशन विभाग

इन विभागों में निर्देशन विभाग सबसे अधिक महत्व का समझा जाता है। कहानी के बाद सबसे अधिक महत्व पूर्ण निर्देशन का होता है। किसी चरित्र के लिए कौन कलाकार उपयुक्त होगा, उसे चुनना निर्देशक का काम है। जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, अभिनय की सारी ज़िम्मदारी निर्देशक की होती है। अक्सर प्रमुख अभिनेताओं का चुनाव निर्माता करता है, पर यह प्रथा ग़लत है।

चित्रालेख तैयार होने के बाद या तैयार होने के समय निर्देशक, कैमरा मैन और साउण्ड इंजीनियर की सलाह ले लेना आवश्यक है क्योंकि इन लोगों की सलाह से चित्रालेख में काफ़ी सुधार हो सकते हैं। यही नहीं, इन लोगों से सलाह लेने से ये लोग चित्र की भावना से एक रस और एक रूप भी हो जाते हैं।

निर्देशक के साथ उसके सहायक होते हैं। निर्देशन, जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, अभिनय के साथ सम्बद्ध है। इस अभिनय के साथ एक और भी बात के लिए निर्देशक को सचेत होना पड़ता है। वह यह कि दृश्य में अभिनेता कौन-से वस्त्र या आभूषण पहने है। सहायक निर्देशक यह सब लिखता जाता है। चित्र की शूटिंग में प्रायः तीन दिन लगते हैं। इस बीच में अभिनेता दस-पांच तरह के कपड़े पहन सकता है। कहानी के कितने भाग में एक चरित्र एक प्रकार के वस्त्र पहने है इसका संकेत चित्रालेख में होता है।

शूटिंग घटनाक्रम के अनुसार नहीं होती है, सेट के अनुरूप होती है। मान लें कि नायिका के शयनागर में कहानी की पांच घटनाएं घटित होती हैं। पहले दिन वह एक सपना देखती है। फिर कुछ दिनों के बाद नायिका अपनी सहेली के साथ बैठी अपने प्रेम की और प्रेमी की बात करती है। उसके उपरान्त उसके पिता उसके कमरे में आकर समझाते हैं कि वह अपने प्रेमी का ख्याल छोड़ दे और जहां पिता ने उसका विवाह निश्चित किया है वहां विवाह कर ले। चौथी बार वह अपने कमरे में बन्द है, और कमरे की पिछली खिड़की से भागती है। पांचवीं बार उसके सगे सम्बन्धी, पिता कमरे में उसे ढूंढते हुए आते हैं। वहां नायिका का एक पत्र पिता को मिलता है।

इन पांच घटनाओं की शूटिंग एक साथ होगी, यद्यपि इन पांच घटनाओं के बीच में साल छः महीने का समय लगता है। इन पांच घटनाओं में नायिका हर बार नये वस्त्र पहने है क्योंकि ये सब घटनाएं एक दूसरे से काफ़ी समय के बाद होती हैं।

अब हम इसी प्रसंग के दूसरे पहलू पर आते हैं। शयनागार के सेट में नायिका अपनी सहेली से जो बात करती है वह कहीं बाहर से अपनी सहेली के साथ आ कर। शयनागार में आने के पहले नायिका एक उत्सव में गई थी। वहाँ उसकी मुलाक़ात नायक के साथ हुई थी।

नायक के साथ वह मोटर में बैठ कर एक उद्यान में गई। उस उद्यान में उसकी भेंट सहेली से हुई। नायिका और सहेली वहाँ नायक से विदा लेते हैं.. इसके बाद सहेली उसे घर पहुँचाने आती है।

शयनागार के दृश्य लेने के बाद अब हम उस स्थान का सेट बनाते हैं जहाँ उत्सव हुआ था और जहाँ नायक नायिका में परिचय हुआ था। जब हम उस उत्सव का दृश्य लेते हैं तब हम नायिका को वही वस्त्र और आभूषण पहने और उसी प्रकार का शृंगार किए दिखलायेंगे जो वह शयनागार के दूसरे दृश्य में पहने थी।

इस तरह जब तक शूटिंग होती रहती है तब तक हमें किस क्रम से घटनाएं होती हैं इस पर सतर्क रहना पड़ता है। इस सब का ध्यान रखने वाला कान्टीन्यूटी मैन कहलाता है और यह विभाग निर्देशन के अन्तर्गत रहता है। निर्देशन विभाग का यह काम है कि वह इस सब को देख ले। किस दृश्य की शूटिंग होती है, इसकी सूचना निर्देशक निर्माता को देता है।

निर्माता का विभाग प्रोडक्शन विभाग कहलाता है। यह प्रोडक्शन विभाग वस्त्र विभाग, सेटिंग विभाग आदि को चित्रालेख के अनुसार आदेश दे देता है। जिन अभिनेताओं का काम है उनको सूचना देना एवं एकत्रित करना भी प्रोडक्शन विभाग का काम है।

प्रोडक्शन विभाग के दो महत्वपूर्ण काम और हैं। प्रथम आउटडोर शूटिंग की व्यवस्था करना। बन, पर्वत, बाग़, नगर की सड़क...आदि कितने ऐसे स्थान हैं जिनके बनाने की व्यवस्था स्टूडयो में नहीं की जा सकती। बम्बई में बनने वाले चित्र में दिल्ली की कहानी है और दिल्ली की कहानी में लाल क़िला, कुतुब मीनार आदि के दृश्य आते हैं। इन स्थानों के चित्र लेने के लिए बहुत-से लोग आते हैं। प्रोडक्शन विभाग का काम है यह देखना कि कितना काम स्टुडियो में हो सकता है और कितना काम बाहर होगा।

प्रोडक्शन विभाग का दूसरा महत्वपूर्ण काम है अभिनेताओं को एकत्रित करना। फ़िल्मों में काम करने वाले अभिनेताओं की दो श्रेणियां होती हैं। एक तो वे जो विशेष चरित्रों के रूप में आते हैं, दूसरे वे जो एकाध दृश्य में आकर चले जाते हैं। हम जब हजारों आदमियों की भीड़ दिखाते हैं—मीटिंग में या जलूस में या किसी थियेटर के हाल में तो वह भीड़ केवल एक दृश्य में ही आती है। इस प्रकार के काम करने वाले ऐक्स्ट्रा कहलाते हैं। बम्बई कलकत्ता आदि फ़िल्म कम्पनियों के क्षेत्र में ऐक्स्ट्रा-सप्लायर रहते हैं। प्रोडक्शन विभाग ऐक्स्ट्रा-सप्लायर से कह देता है कि किस दिन उसे किसे कितने आदमियों की आवश्यकता होगी, और ऐक्स्ट्रा सप्लायर उन लोगों को लेकर स्टूडियो में आ जाता है।

प्रोडक्शन विभाग के बाद कैमरा विभाग का स्थान आता है। चलचित्रों की सफलता का एक बड़ा भाग कैमरा पर निर्भर है। चरित्रों का भावांकन ठीक तौर से करना, स्थानों और घटनाओं को प्रभावोत्पादक ढंग से दिखलाना—यह कैमरा विभाग का काम है। असल में चित्र देखने के लिए बना है, अगर फ़ोटोग्राफ़ी ख़राब है तो चित्र सफल हो ही नहीं सकता। ख़राब फ़ोटोग्राफ़ी के साथ सुन्दर से सुन्दर अभिनेता एवं अभिनय, मनोहर से मनोहर दृश्य—ये सब बेकार हैं।

कैमरा विभाग को आम तौर से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है :

१ कैमरा

२ स्टिल फोटोग्राफी

३ स्पेशल एफेक्ट्स !

कहानी को चित्रित करना कैमरा विभाग का काम है। पर विज्ञापन के लिए चित्र लेना, कान्टीन्यूटी के लिए चित्र लेना ताकि दूसरे सेट में वैसे ही वस्त्राभूषण हों, एक दिन की शूटिंग के समाप्त होने के समय

चरित्र किस स्थान पर और किस मुद्रा में थे इसका चित्र लेना ताकि दूसरे दिन की शूटिंग उसी स्थान और उसी मुद्रा से शुरू कराई जा सके —यह काम स्टिल कैमरा विभाग का है।

तीसरा विभाग स्पेशल एफेक्ट्स का है। अक्सर चित्रों में वे बातें दिखाई जाती हैं जो वास्तव में नहीं की जा सकतीं। दीवार का चलना, गलीचे का उड़ना, बड़े-बड़े पहाड़ों का टूटना, कृत्रिम भूकम्प आदि—यह सब ट्रिक फोटोग्राफ़ी का काम है। इसके लिए एक विशेष कैमरा-मैन होता है जो स्टूडियो में ही यह सब काम चित्रित करता है।

बिजली या प्रकाश विभाग प्रायः कैमरा विभाग का ही भाग हुआ करता है क्योंकि सेट पर जो प्रकाश होता है उसका नियन्त्रण केमरा मैन के हाथों में है। फ़िल्म बनता है बन्द स्टूडियो में और उस बन्द स्टूडियो में अनगिनती बिजली के लैम्प होते हैं। यह लैम्प पांच हज़ार कैण्डिल पावर से लेकर पांच सौ कैण्डिल पावर तक के होते हैं। किसी-किसी उप-दृश्य में तो चालीस-पचास हज़ार कैण्डिल पावर का प्रकाश करना पड़ता है। चलते फिरते और अभिनय करते हुए चरित्रों के चित्र ठीक ठीक आ सकें, इतना प्रकाश होना चाहिए। और इस प्रकाश की मात्रा का निर्णय कैमरा-मैन ही कर सकता है। पर यह बिजली का विभाग अलग ही होना चाहिए जिस पर केमरा मैन का नियन्त्रण तो हो लेकिन संचालन किसी बिजली के इंजीनियर के हाथ में हो। स्टुडियो की सभी प्रकार की बिजली का संचालन और मरम्मत भी तो इसी विभाग के अन्तर्गत आती है।

कैमरा विभाग के बाद साउण्ड विभाग आता है। चित्र में जो कुछ भी बोला जाता है वह स्पष्ट सुन पड़े। साउण्ड को ग्रहण करने के लिए माइक्रोफ़ोन नामक यन्त्र की ज़रूरत होती है, और इस यन्त्र का वहां पर होना अत्यावश्यक है जहां अभिनय होता हो। फिर बातें करते हुए लोग चल रहे हैं, यह दृश्य भी दिखाए जाते हैं।

माइक्रोफोन को कहां लगाया जाय जिससे वह चित्र में दिखे न और साथ ही हर तरह की आवाज़ वह ग्रहण कर ले, यह बड़ा कठिन काम है। साउण्ड इंजीनियर की यह ज़िम्मेदारी होती है कि वह इस सब को देखे। इसके अलावा जो संगीत हम फिल्मों में सुनते हैं वह भी पहले रिकार्ड कर लिया जाता है। संगीत के सूक्ष्मतम तत्वों को ग्रहण करने के लिए बड़ी विकसित साउण्ड मशीनों का आवश्यकता पड़ती है। और वाद्यों के स्पष्ट स्वर आ सकें उसके लिए माइक्रोफोन के आस-पास वाद्य यन्त्रों को ठीक तरह से रखना स्वयं में एक कला है।

फिल्म-निर्माण में कला विभाग सबसे बड़ा विभाग माना जाता है क्योंकि इस विभाग के अन्तर्गत कई विभाग आते हैं। कला-विभाग का अध्यक्ष आर्ट डायरेक्टर या कला निर्देशक कहलाता है। इस कला विभाग में सबसे महत्वपूर्ण और बड़ा विभाग सेट-निर्माण का विभाग होता है।

जिस समय चित्रालेख तैयार हो जाता है उस समय निर्माता कला-निर्देशक के साथ बैठ कर यह निर्णय कर लेता है कि फिल्म कितने सेटों में बनेगा। ये सेट वे स्थान होते हैं जहां कहानी का घटनाएं घटित होती हैं। कमरा, बरामदा, बाज़ार, बड़े-बड़े भवन, दूकान—इन सबों के सेट बनाए जाते हैं। कलाकार सबसे पहले प्रत्येक सेट काएक मानचित्र बनाता है, उस मानचित्र को निर्देशक, कैमरा-मैन और साउण्ड इंजीनियर देख कर उस पर अपनी स्वीकृति देते हैं।

इस मानचित्र के अनुसार सेटिंग विभाग बढ़ईखाने में सेट तैयार करवाता है। फिर सजावट विभाग का काम आता है। पलंग, कुरसी, बिजली की फिटिंग, आल्मारियां आल्मारियों, में किताबें आदि जितनी सजावट की चीज़ें हैं, सजावट विभाग उन सब चीज़ों को मंगा कर सेट सजवा देता है। यदि दृश्य का चित्र लेते समय अन्य चीज़ों की

आवश्यकता है तो निर्देशक उन सब चीज़ों की एक सूची बना कर सजावट विभाग को दे देगा।

इसके बाद वस्त्राभूषण विभाग आता है। निर्देशक और निर्माता मिल कर वस्त्रों और आभूषणों की एक तालिका तैयार कर लिया करते हैं। किस दृश्य में कौन चरित्र कैसे वस्त्र या आभूषण पहनेंगे इसका निर्णय वस्त्राभूषण विभाग को दे दिया जाता है। यह विभाग उन वस्त्रों और आभूषणों को एकत्रित करके उस पर क्रमानुसार चरित्र के नाम, दृश्य के नाम आदि लेबल लगा कर रख लेता है।

मेक अप विभाग का काम है चरित्रों के मुख पर रंग लगाना, बालों की सजावट आदि-आदि। कुछ बड़े-बड़े कलाकार अपना मेक अप स्वयं कर लेते हैं, लेकिन जहाँ भेस बनाने का सवाल आता है—दाढ़ी मूँछ—सभी कुछ कृत्रिम लगाने पड़ते हैं वहाँ एक अनुभवी मेक अप मैन की आवश्यकता तो पड़ती ही है। मेक अप विभाग की उपेक्षा नहीं की जा सकती। वह ढंग का होना ही चाहिए।

भारतीय फ़िल्म जगत् में संगीत विभाग बहुत महत्व का समझा जाता है। मेरे मत से इस संगीत विभाग को इतनी अधिक प्रधानता नहीं देनी चाहिए जितनी दी जा रही है। पर, जो परम्परा चल पड़ी है उसका मिटा सकना आसान तो नहीं है।

ऐसा लोगों का मत है कि भावना की अभिव्यक्ति में पार्श्व संगीत अथवा बेक ग्राउण्ड म्यूज़िक बहुत बड़ी मात्रा में सहायक होता है। यह पाश्चात्य विचार है, लेकिन मैं समझता हूँ कि इस मत में सत्य है। पार्श्व-संगीत हमारे नाटक क्षेत्र का आवश्यक अंग बन गया है और पार्श्व-संगीत देने के लिए एक संगीत निर्देशक तथा कुछ वाद्य बजाने वालों का होना आवश्यक है। यह पार्श्व-संगीत चित्र बन जाने के बाद दिया जाता है।

पर भारतीय फ़िल्मों में गानों की प्रमुखता मानी जाती है। यहाँ तक कि गाने डालने के लिए कहानी तक बदल दी जाती है। मुझे कुछ वर्षों पहले की बात मालूम है जब लोग फ़िल्म कम्पनी खोल कर पहले से नौ-दस गाने रिकार्ड कर लेते थे और उन गानों के बल पर बने हुए चित्रों का सौदा कर लिया करते थे।

इधर हाल में बम्बई की फ़िल्म कम्पनियों ने बाहर से संगीत लेने की प्रथा चला दी है। जिस संगीत निर्देशक के गाने सफल हुए उसकी मांग बढ़ गई। प्रत्येक संगीत निर्देशक के साथ उसका सहायक होता है, एकाध संगीत निर्देशक तो अपने साथ कुछ गीत लेखक भी रखते हैं। संगीत निर्देशक अपनी पसन्द के अनुसार गाने के साज़ों को तथा उन साज़ों को बजाने वालों को चुनता है। यह संगीत निर्देशक पार्श्व संगीत भी बना लेता है।

यहाँ मुझे एक बात और कहनी है। मैंने जो भी कार्य-प्रणाली लिखी है वह उन फ़िल्म कम्पनियों की है जिनके निजी स्टुडियो हैं। दुर्भाग्यवश आजकल बहुत-सी ऐसी फ़िल्म कम्पनियाँ हैं जिनका कोई निजी स्टुडियो नहीं है और जो किराये के स्टुडियो में फ़िल्म बनाया करती हैं। किराये के स्टुडियो होने के कारण ही संगीत निर्देशकों को तस्वीर के हिसाब से ठेके हो जाया करते हैं।

संगीत विभाग के साथ ही नृत्य विभाग होता है, यद्यपि नृत्य विभाग की परम्परा अब मिटती जा रही है। अब कुछ ख़ास ढंग की ही फ़िल्मों में नृत्य आता है, साधारण सामाजिक चित्रों से नृत्य निकल चुका है।

चित्र बनाते समय चित्र कैसा बना है इसका ज्ञान होना आवश्यक है। दिन में जो चित्र बनता है उसे उसी शाम को छप जाना चाहिए। दूसरे दिन सुबह काम प्रारम्भ होने के पहले पिछले दिनों के चित्रों को देख लेना आवश्यक होता है। यह चित्र दिखाने वाला विभाग प्रदर्शन विभाग अथवा प्रोजेक्शन विभाग कहलाता है। यदि पिछले दिन के

चित्रों में कोई कमी रह गई है तो उसे फिर से शूट किया जा सकता है क्योंकि सेट वैसा का वैसा मौजूद रहता है, सेट की सामग्री मौजूद रहती है और कलाकार भी वहीं मौजूद रहते हैं।

प्रोजेक्शन विभाग प्रत्येक स्टुडियो में होना चाहिए। समय-समय जो जो भी चित्र बन रहा है उसको देखते रहना चाहिए। इससे चित्र के सम्पादन में भी बड़ी सहायता मिलती है।

चित्र के प्रदर्शन के पहले चित्र का छपना भी तो आवश्यक है। एक अच्छे स्टुडियो में एक अच्छी लेबरोटरी का होना नितान्त आवश्यक है। वैसे स्टुडियो निर्माण का खर्च बचाने के लिए बम्बई के स्टुडियो के साथ लेबरोटरी न बनाने की प्रथा चल पड़ी है। नगर में कई लेबरो-टरियाँ हैं जहाँ चित्रों के धुलने और छपने का काम आसानी से हो जाता है। और लेबरोटरियों में खर्च कम बैठता है। लेकिन बाहर की लेबरो-टरियों में काम कराने से समय पर काम नहीं मिल सकता। जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, जिस दिन चित्र का निर्माण हुआ उसी रात को उसका धुलना और छपना आवश्यक है क्योंकि दूसरे दिन सुबह उसे देख लिया जाना चाहिए। यह सुविधा प्राप्त न होने के कारण इधर के चित्रों में बहुत से छोटे-मोटे दोष दिखलाई पड़ जाते हैं।

चित्र का सम्पादन आजकल स्वयं निर्देशक करता है, पर यह प्रथा भी ग़लत है। चित्र का सम्पादन सम्पादक को करना चाहिए, और यह सम्पादक निर्माता की अध्यक्षता में काम करता है। सम्पादक के पास चित्रालेख होता है, वह उसी चित्रालेख के अनुसार चित्र का सम्पा-दन करता जाता है। बहुत से ऐसे दृश्य हैं जो स्टुडियो में नहीं बनाए जा सकते, ये दृश्य बाज़ार में मिलते हैं और उन दृश्यों का उपयोग विभिन्न चित्रों में किया जाता है। ये स्टाक-शाट्स कहलाते हैं। फ़िल्म सम्पादन विभाग में तरह-तरह के स्टाक-शाट्स रहते हैं और वह सम्पादन करते समय चित्र को पूरी तौर से सजा देता है।

सम्पादक विशेषज्ञ होता है। सम्पादन का काम वैसे हर एक निर्माता और निर्देशक को जानना चाहिए, लेकिन सम्पादक का होना एक अच्छे स्टुडियो में नितान्त आवश्यक है।

ऊपर जो कुछ मैंने लिखा है वह एक उस अच्छे स्टुडियो की न्यून-तम आवश्यकताओं के सम्बन्ध में लिखा है जो स्वयं अपने चित्र निर्माण करता है और जो स्वयं अपने पर आत्म-निर्भर है।

आज के दिन व्यावसायिक निर्माताओं की संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी है, और इन निर्माताओं के पास इतने आर्थिक साधन नहीं हैं कि वे स्वयं अपना कोई आत्म निर्भर स्टुडियो बना सकें। इसका परिणाम यह होता है कि ये लोग दूसरों के स्टुडियो किराये पर लेकर चित्रों का निर्माण करते हैं। विशेष परिस्थितियों में इन निर्माताओं की आवश्य-कताएँ कम या अधिक हो सकती हैं।

८

चित्रालेख-लेखक को स्टुडियो के प्रत्येक विभाग का काम अच्छी तरह समझना चाहिए। वही चित्रालेख सफल कहलाएगा जिसको सामने रख कर प्रत्येक विभाग का आदमी सरलता-पूर्वक और बिना किसी भ्रम के अपना काम कर सके। बिना चित्रालेख के सहारे कोई भी विभाग अपना काम ठीक तरह से नहीं कर सकता।

चित्रालेख फ़िल्म में कही हुई कहानी है। इस कहानी का हर पहलू चित्रालेख में प्रकट होना चाहिए। चित्रपट पर कहानी कहने की अपनी एक निजी कला है। कहानी के किसी प्रसंग को चित्रपट पर कैसे खोला जाय, यह काम कैमरा-मैन का अवश्य है लेकिन चित्रालेख में उस स्थल का संकेत तो होना ही चाहिए जहाँ कहानी का कोई प्रसंग खुलता है। इस प्रसंग के खुलने के क्रम को अंगरेज़ी में 'फेड-इन' कहते हैं, और हिन्दी में इसे हम 'क्रम दर्शन' सकह कते हैं। क्रम दर्शन में धीरे-धीरे

चित्र हमारे सामने आता है क्योंकि वहाँ एक नये प्रसंग के साथ नई भावना का संचार होता है, और हमारी आँखों को, हमारे मस्तिष्क को उसके लिए तैयार होना है।

जहाँ कहानी के प्रसंग का अन्त होता है उसे हम अंगरेज़ी में 'फेड आउट' कहते हैं। हिन्दी में हम इसे 'क्रमालोप' कह सकते हैं। कहानी के किसी भी प्रसंग के अन्त होने के संकेत के साथ यह क्रमालोप दर्शक को दूसरे प्रसंग के आने की सूचना देता है।

फ़िल्म की कहानी भी नाटकों की भांति ही दृश्यों में विभाजित होती है और फ़िल्मी कहानी के दृश्य के का ढांचा नाटक के दृश्य आधार पर ही माना गया है। एक स्थान पर जितनी घटना एक समय में हो वह एक दृश्य कहलाता है। नाटक के दृश्यों में और फ़िल्मी दृश्यों में अन्तर यह होता है कि नाटक का दृश्य प्रायः एक घटना के समय वही रहता है, पर फ़िल्मी कहानी में ये दृश्य बदलते रहते हैं, और कई दृश्य एक दूसरे के बाद बेर-बेर दिखाए जा सकते हैं। सुविधा के लिए दृश्य का प्रत्येक प्रदर्शन एक नया दृश्य कहलाता है।

उदाहरण के लिए 'वासवदत्ता' के चित्रालेख में पहला दृश्य और तीसरा दृश्य एक ही हैं, केवल बीच में दूसरे दृश्य के आ जाने के कारण ये दृश्य अलग-अलग मान लिए गये हैं।

दृश्य के बदलने के चार क्रम माने गये हैं। ये चारों क्रम कैमरा से सम्बन्धित हैं पर चित्रालेख में इनका उल्लेख अवश्य होना चाहिए। पहला तो 'क्रमालोप' है, पर 'क्रमालोप' का प्रयोग दृश्य परिवर्तन के स्थान पर कहानी के प्रसंग के परिवर्तन में ही किया जाता है। कहानी का एक प्रसंग दस-पांच दृश्यों में लगातार चल सकता है। दृश्यों के इन परिवर्तनों के नाम अलग-अलग हैं।

एक प्रदर्शित दृश्य से सम्बन्ध रखने वाला तथा दृश्य पर प्रभाव डालने वाला जो दूसरा दृश्य उसी समय हो रहा है, उस पर जाने के लिए

दृश्य को कहीं काट कर दूसरा दृश्य एकदम आरम्भ कर देना होता है। इस प्रणाली को अंगरेज़ी में 'कट' कहते हैं और हिन्दी में यह प्रणाली 'काट' नाम से प्रचलित हो सकती है।

कहानी का एक प्रसंग चल रहा है, उसी प्रसंग में कुछ ऐसे दृश्य भी परिवर्तन करने हैं जहां समय बीतना भी दिखलाना है, वहां हम 'परिवर्तन' अथवा अंगरेज़ी के डिज़ाल्व का सहारा लेते है। इसमें कहानी के प्रसंग के प्रमुख अंग से हम दृश्य का अन्त करके फिर उसी पर दृश्य आरम्भ कर देते है। अंगरेज़ी में 'वाइप' नाम का एक और शब्द चल पड़ा है लेकिन यह वाइप डिज़ाल्व का रूपान्तर भर है और प्रायः स्थान-परिवर्तन में इसका प्रयोग होता है। इसमें एक स्थान-लोप होता जाता है और साथ ही दूसरा स्थान प्रकट होता जाता है।

निर्देशक द्वारा प्रत्येक दृश्य कई उपदृश्यों में विभाजित कर दिया जाता है क्योंकि एक दृश्य का बिना उसे विभाजित किए हुए चित्र खींच लेना बहुत कठिन समझा जाता है। यद्यपि लम्बे दृश्यों को फ़िल्मी कला में महत्वपूर्ण समझा जाता है और दर्शक पर उन दृश्यों का प्रभाव भी बहुत पड़ता है, पर इन लम्बे दृश्यों के चित्र खींचने में लोगों को परिश्रम करना पड़ता है और समय की भी बहुत बरबादी होती है।

दृश्य को प्रभावोत्पादक बनाना कैमरा मैन का काम है, पर कभी-कभी भावना को उभारने वाले संचरण चित्रालेख-लेखक की दृष्टि में आ जाते हैं, और वह उन संचरणों का चित्रालेख में उल्लेख कर सकता है। उस उल्लेख से निर्देशक और कैमरा मैन को निश्चय ही सहायता मिलेगी।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि चित्रालेख-लेखन फ़िल्म का आधे से अधिक निर्देशन है। चित्रालेख-लेखक के आगे कथा का एक मानसिक चित्र रहता है और वह अपने उसी मानसिक चित्र को लिपिबद्ध करता है। इस लिपिबद्ध चित्रालेख को सफल-रूप से चित्र में प्रदर्शित करना एवं

उस कथा में आने वाली ध्वनियों का—इनमें संवाद और संगीत सभी सम्मिलित हैं—समावेश करना, यह काम निर्देशक, कैमरा-मैन और साउण्ड इंजीनियर का है। इसी लिए चित्रालेख लिखते समय निर्देशक, कैमरा-मैन और साउण्ड इंजीनियर से विचार-विमर्श करते रहना आवश्यक है।

६

संवाद चित्रालेख का एक महत्वपूर्ण भाग है इसलिए संवादों के सम्बन्ध में मैं यहाँ कुछ कहना आवश्यक समझता हूँ।

संवादों में नाटकीयता-मय कवित्व का दर्शक स्वागत करते हैं और इसलिए अनादि काल से नाटकों की भाषा बोलचाल की भाषा से भिन्न रही है। पर यह भाषा इतनी भिन्न और साहित्यिक न होनी चाहिए कि उसे दर्शक समझ ही न सके।

फिल्मी दुनिया में हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण रहा है और अब भी है। मुझे भारतीय फिल्म के वे प्रारम्भिक दिन याद हैं जब फ़िल्मों की भाषा विशुद्ध हिन्दी होती थी। न्यू थियेटर्स और प्रभात के फ़िल्मों को असफल नहीं कहा जा सकता यद्यपि इनके अधिकांश फिल्मों की भाषा हिन्दी रही है। बाम्बे टाकीज़ में जिस समय मुझे बुलाया गया था—यह बात सन् १९४२ की है—उस समय फिल्म कम्पनियों में हिन्दी—लेखकों की मांग थी। यद्यपि क्लिष्ट हिन्दी का उस समय विरोध होता था, फिर भी क्लिष्ट हिन्दी वर्जित न थी। बंगाल, बिहार, पूर्वीय उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, मालवा, गुजरात, महाराष्ट्र एवंदक्षिण वालों को हिन्दी ही ग्राह्य थी। पंजाब, सिन्ध एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश वालों की मांग उर्दू की थी। राजनीतिक कारणों से महात्मा गांधी की हिन्दुस्तानी की पुकार से फिल्मों की भाषा पर कुछ असर अवश्य पड़ा और संस्कृत-निष्ठ हिन्दी का विरोध स्पष्ट

हो गया। फिर भी फिल्मी दुनिया हिन्दी लेखकों के हाथ में थी। फिल्मों के गानों की भाषा भी हिन्दी ही होती थी।

सन् १६४० के बाद फिल्मी दुनिया में पंजाब के उर्दू-भाषी लोगों का प्रवेश तेज़ी के साथ हुआ और फिल्मों की भाषा बदलने लगी। हिन्दुस्तानी के नाम पर उन दिनों सरकारी रेडियो में भी फारसी और अरबी–निष्ठ उर्दू का व्यवहार किया जाने लगा। हिन्दू–मुस्लिम समझौतों के नाम पर कांग्रेस के मुसलमान नेताओं ने भी उर्दू को हिन्दुस्तानी कह कर हिन्दी से अधिक महत्त्व देना प्रारम्भ कर दिया, और भारत के हिन्दू इस राजनीतिक समझौते में देश का कल्याण समझ कर भाषा के सम्बन्ध में मौन हो गए।

सन् १६४२ के स्वतंत्रता संग्राम के बाद फ़िल्मी दुनिया का रूप ही बदल गया। उन दिनों जब काफी संख्या में हिन्दी लेखक जेलों में बन्द थे, फ़िल्मी दुनिया में अजीब चहल-पहल थी। युद्ध के कारण पूंजीपतियों की आमदनी बेतहाशा बढ़ गई थी और लोगों ने काले बाज़ार का रुपया फ़िल्मों में लगाना प्रारम्भ कर दिया। फ़िल्मी दुनिया में विलासिता का नग्न नृत्य आरम्भ हो गया।

बात कुछ अजीब-सी है, लेकिन सत्य है। हिन्दी की और उर्दू की संस्कृतियों में कुछ आधार—भूत अन्तर है। जब मैं बम्बई में था, उर्दू के एक युवा लेखक जो आजकल उर्दू के एक प्रसिद्ध लेखक बन चुके हैं, बम्बई पधारे। वे उत्तर-प्रदेश के रहने वाले हैं। वे मुझ से मिलने आए। बात-बात में उन्होंने मुझ से पूछा, "वर्मा जी—हम आप एक ही जाति के हैं, एक ही प्रदेश के हैं, एक ही भाषा बोलते हैं। फिर भी हम आप जब साहित्य में आते हैं तब एक दूसरे से दूर, बहुत दूर होते हैं। आप बंगाली, मराठी, तेलगू, गुजराती के बहुत नज़दीक हैं लेकिन उर्दू से बहुत दूर हैं। इसका क्या कारण है?"

मैंने उस प्रश्न की महत्ता अनुभव की। कुछ सोच कर मैंने उत्तर दिया, "इसका कारण है कि हम दोनों दो अलग-अलग संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।"

"यह कैसे?" उन्होंने पूछा।

मैंने कहा, "देखिए, उर्दू की संस्कृति इस देश की संस्कृति नहीं है! वह विदेश से हमारे यहाँ आई है। लैला-मजनूं, शीरीं-फ़रहाद, सोहराब-रुस्तम—ये लोग हमारे देश के तो नहीं थे। वीरता के नाम पर भीम का, हनुमान का ज़िक्र उर्दू वाले नहीं करते, उन्हें भीम और हनुमान से घृणा है क्योंकि वे इस देश के हैं, आप वीरता में सोहराब और रुस्तम का ही ज़िक्र करेंगे। हमारे देश में प्रेम की पावनता को ही महत्व दिया गया है—सीता-सावित्री शकुन्तला—इनमें उर्दू वालों को कोई रुचि नहीं, वे तो लैला और शीरीं के ही गुण गायेंगे। नरगिस तो भारतवर्ष में नहीं होता, क्या कमल से उर्दू वालों का काम नहीं चल सकता?"

वह सकपकाए, "यह तो साहित्यिक प्रतीक हैं जो हमें परम्परा से मिले हैं, इनसे आपकी और मेरी संस्कृति में क्या भेद पड़ता है?"

मैंने उत्तर दिया, "अवश्य पड़ता है। तुम बताओ अहिंसा पर कितने उर्दू लेखकों का विश्वास है? कौन सा बड़ा उर्दू का लेखक है जो शराब से परहेज करता है? देश में स्वतन्त्रता का जो संग्राम चला है, उसमें पड़ कर कितने उर्दू-लेखक जेल गए हैं? आज उर्दू के लेखक क्या सरकारी नौकरियों पर या फिल्म कम्पनियों में मौज नहीं कर रहे हैं?"

वह निरुत्तर हो गए।

भाषाएँ संस्कृतियों की प्रतीक हुआ करती हैं, यह निश्चित बात है। उर्दू भाषा जन की भाषा नहीं रही, वह प्रतिक्रियावादी साम्प्रदायिक लोगों की भाषा रही है—वह राजदरबारियों की भाषा रही है।

सन् १६४७ में जब देश का बटवारा हुआ और फिल्मी दुनिया में एकाएक सिन्धी और पंजाबी लोग आ गए—वह काल फिल्मी दुनिया से हिन्दी के निर्वासन का काल था। पाकिस्तान ने अपनी राजभाषा उर्दू घोषित कर दी, भारतवर्ष में असाम्प्रदायिकता का उपदेश देने वालों के कारण हिन्दी की आवाज़ तेज़ नहीं हो सकी। इसका परिणाम यह हुआ कि पाकिस्तान में फिल्में चलाने के लिए भारतीय फिल्म-निर्माताओं ने एक बारगी हिन्दी का बहिष्कार कर दिया।

भाषा के परिवर्तन से फ़िल्म में जिस संस्कृति का समावेश हुआ वह असात्विक और अपवित्र संस्कृति थी। ओछी और छिछली कहानियां—उतने ही ओछे और छिछले दृश्य और उसी तरह के संवाद। यह संस्कृति अधिकांश में फ़ारसी और अरबी से लदी उर्दू में होती है। और इस भाषा को भारतीय जनता समझती नहीं—यह बहुत बड़ा सत्य है। उन नगरों में भी जहां उर्दू का दौर दौरा था देश के बटवारे और हिन्दी के राजभाषा घोषित होने के बाद हिन्दी का प्रचार आरम्भ हो गया है।

लेकिन संवाद-लेखक को यह समझ लेना चाहिए कि अभी तक हिन्दी न समझने वालों का एक बहुत बड़ा दल इस देश में मौजूद है। यह सच है कि "ख्वाबगाहे" "सरापानाज़" आदि शब्दों को भारतीय जनता का बहुत बड़ा भाग नहीं समझता और आज जो फ़िल्मों की देश में इतनी दुर्दशा हो रही है उसका एक कारण यह फ़ारसी और अरबी से लदी भाषा भी है, फिर भी यह सच है कि देश में अभी ऐसे लोगों की संख्या नगण्य नहीं है जो कवित्वमय और संस्कृतनिष्ठ हिन्दी से कोसों दूर हैं। जहां तक हो सके बोल-चाल की भाषा का उपयोग ही किया जाना चाहिए पर संवादों में ऐसे स्थल तो आ ही जाते हैं जहां कवित्वमय साहित्यिक भाषा देना आवश्यक हो जाता है। वहां हिन्दी का ही प्रयोग होना अनिवार्य है क्योंकि देश की भाषा हिन्दी है, उर्दू नहीं

है। देश की संस्कृति कल्याण और पवित्रता की संस्कृति है। इश्क़ और मुहब्बत के स्थान पर प्रेम और स्नेह को आना है—प्रेम और स्नेह में एक प्रकार की पवित्रता है, वह एक कल्याणकारी संस्कृति का अनिवार्य अंग है।

इस स्थान पर मैं हिन्दी वालों की उस प्रवृत्ति की ओर भी संकेत करूंगा जो हिन्दी से उन फ़ारसी और अरबी शब्दों को निकाल फेंकने की ओर है जो हिन्दी भाषा के अवयव बन चुके हैं। वे शब्द रहेंगे। संस्कृति और भाषा का आदान-प्रदान तो हमेशा से होता आया है, इस आदान-प्रदान के प्रति असहिष्णुता हमारे विकास में बाधक होगी। संवाद लेखक उर्दू फ़ारसी के प्रचलित शब्दों को उपेक्षा नहीं कर सकते।

संवाद लिखते समय लेखक को हमेशा यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उनमें भद्दापन या अश्लीलता न आने पावे। मैं यह मानता हूँ कि श्रृंगार कला का एक महत्वपूर्ण रस है, पर श्रृंगार में नग्नता और अश्लीलता राष्ट्र को नैतिक और चारित्रिक पतन की ओर ले जाती हैं, इसलिए इस नग्न और अश्लील श्रृंगार का सार्वजनिक प्रदर्शन अहितकर और अकल्याणकारी है। राष्ट्र और जन की शक्ति उसके चरित्र और उसकी ईमानदारी पर निर्भर है।

फ़िल्मी दुनिया का जीवन और उसकी मान्यताएं साधारण जीवन और मान्यताओं से कुछ भिन्न है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। रूप का प्रदर्शन, श्रृंगार का चित्रण—यह सब विलासिता के अवयव हैं। सुरा-सुन्दरी—इनसे फ़िल्म की दुनिया बच ही नहीं सकती। अमेरिका में फ़िल्मी तारिकाओं के दाम्पत्य जीवन की कथायें हमें पढ़ने को मिलती हैं, भारतीय फ़िल्म जगत् में हालत कुछ इससे अच्छी नहीं है। फ़िल्मी व्यवसाय विशुद्ध पैसे का व्यवसाय है—फ़िल्मी दुनिया का एक मात्र देवता पैसा है। फ़िल्मी कहानियों और संवाद के लेखक उसी दुनिया में रहते हैं। उन्हें सतर्क होकर रहना पड़ेगा। फ़िल्मी दुनिया

की मान्यताओं को स्वीकार कर लेने वाला व्यक्ति कभी भी वह चीज़ न दे सकेगा जिसे हम फ़िल्मों में पाना चाहते हैं। विशुद्ध मनोरंजन से ऊपर उठ कर फ़िल्म का क्षेत्र शिक्षा और चरित्र निर्माण भी माना गया है। मैं फ़िल्म-जगत् में ऐसे अनगिनती लोगों को जानता हूँ जो समय-समय पर बड़ी ऊंची भावनाएं और आदर्श चित्रों में प्रदर्शित करने का प्रयत्न करते रहे हैं। पर उनका यह प्रदर्शन हास्यास्पद ही रहा है क्योंकि उसमें विश्वास और जीवन के तत्वों का अभाव रहा है। एक अजीब खोखलेपन से भरे हुए यह प्रदर्शन रहे हैं, और उन चित्रों ने असफल चित्रों की संख्या में वृद्धि ही की है।

फ़िल्मी जगत् के लेखक में बहुत बड़े संयम की आवश्यकता है, उसके अन्दर वाली सात्विकता से भरी कल्याणकारिणी मान्यताएँ नष्ट न हो जाएं, इसके लिए उसे हमेशा सतर्क रहना पड़ेगा।

१०

किसी भी फ़िल्म का सबसे महत्वपूर्ण भाग है उस फ़िल्म की कहानी। फ़िल्मी कहानी कैसी हो, वह कहाँ से प्राप्त की जाए—ये प्रश्न हमेशा फ़िल्म-निर्माताओं के सामने रहे हैं और रहेंगे। कहानी का चुनाव निर्माता के सामने एक महत्वपूर्ण चुनाव है।

फ़िल्मी कहानी के चुनाव के समय निर्माताओं द्वारा जो लापरवाही बरती जाती है, वही आज भारतीय फ़िल्म-व्यवसाय के ह्रास का मूल कारण है। फ़िल्मी कहानी के लेखकों को भी जनरुचि का विशेष ज्ञान होना चाहिए। जो अमर साहित्य की कहानियां हैं वे इनी-गिनी हैं, जिस संख्या में हमारे देश में फ़िल्में बनती हैं उसके अनुसार प्रत्येक वर्ष प्रायः सौ नई फ़िल्मी कहानियों की आवश्यकता पड़ती है।

फ़िल्मी कहानी लेखक को फ़िल्म कम्पनियों के वातावरण से ऊपर उठकर तथा वहाँ की संस्कृति से अलग हटकर अपनी कहानी की

रचना करनी चाहिए। मैं यह मानता हूँ कि इस सम्बन्ध में निर्माता एवं निर्देशक से कहानीकार का संघर्ष हो सकता है—और अधिकांश में होता है, पर कहानीकार की सफलता उसके नैतिक बल पर ही है। कुछ दिनों के लिए निर्देशक और निर्माता की बात मानकर अपनी कला के दुरुपयोग से उसे लाभ हो सकता है, पर अन्त में अपनी असफलताओं के कारण उसे फ़िल्म क्षेत्र से हटना ही पड़ेगा। साथ ही इस प्रकार आत्म-समर्पण करके यह साहित्यिक अपने अन्दर उन कमज़ोरियों का समावेश कर लेगा जो उसके साहित्यिक जीवन में घातक सिद्ध होंगी।

फ़िल्मी कहानी में आंख और कान को तुष्ट करनेवाले तत्व होने चाहिए, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता, पर फ़िल्मी कहानी में कहानी के तत्व का होना अनिवार्य है। इधर पश्चात्य देशों में छोटे-छोटे चुटकुले नाम की चीज़ों को लेकर फ़िल्म बनाने का प्रयत्न किया गया है, और ये प्रयत्न कई स्थलों पर सफल भी हुए हैं, पर हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि ये प्रदर्शन भर थे, और प्रदर्शन प्रायः सफल भी हो जाते हैं। पर इन प्रदर्शनों को कहानी का स्थान देना ग़लत होगा, प्रदर्शन में कहानी की सर्वकालीन सफलता का बल नहीं हैं। कहानी का अपना एक निजी तत्व है।

प्रत्येक कहानी के साथ उसका एक सन्तुलन होता है जिसे हम अंग्रेजी में बैलेंस कहते हैं। जिस कहानी में सन्तुलन का अभाव है वह निश्चय असफल होगी। जिस समय एक कहानीकार कहानी कहता या लिखता है, कहानी में सन्तुलन स्वतः आता जाता है। दूसरों के कहने से कहानी के उस सन्तुलन के साथ खिलवाड़ करना ग़लत है। एक घटना या एक चरित्र के बदलने से कहानी का समस्त सन्तुलन नष्ट हो जाता है।

निर्माताओं और निर्देशकों में एक बहुत बड़ी कमज़ोरी यह है कि वे कहानी में सन्तुलन वाले सत्य को नहीं जानते और कहानी में मन-माने परिवर्तन कर दिया करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वास्तव में सप्राण कहानी भी फ़िल्म में आकर निष्प्राण और निर्बल बन जाती है।

कहानीकार को एक और कमज़ोरी से बचना चाहिए। वह कमज़ोरी है नक़ल की। इधर कुछ दिनों से भारतीय फ़िल्मों में अंग्रेज़ी फ़िल्मों की कहानियाँ थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ आती रही हैं।

अंग्रेज़ी कहानियों की नक़ल अधिकांश में वे निर्देशक या निर्माता करते हैं जो स्वयं कहानीकार होने का दावा रखते हैं। पर उनकी देखा-देखी या उनको सन्तुष्ट करने के लिए फ़िल्मी दुनिया के कहानीकारों में भी यह क़मज़ोरी आ रही है। अंग्रेज़ी कहानियों की नक़ल में परिश्रम कम करना पड़ता है, चित्रपट पर उन्हें देखने के बाद चित्रालेख लेखकों को एवं निर्देशकों को भी उनसे सहायता मिलती है। पर हमें यह न भूल जाना चाहिए कि हमारे देश की संस्कृति, रहन-सहन, विचार-धारा इन सबों में विदेशों में और हममें ज़मीन-आसमान का अन्तर है। यह जो अंग्रेज़ी की कहानियाँ हैं वे हमारे जीवन पर लागू नहीं होंगी। इने-गिने अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों को छोड़कर अन्य भारतीय इन कहानियों को समझते ही नहीं। आज की फ़िल्मी कहानियां जो निरन्तर असफल होती जा रहीं हैं, उनमें इस प्रकार की कहानी भी एक कारण है।

प्रत्येक साहित्यिक कहानी फ़िल्मी कहानी नहीं बन सकती, फ़िल्म-कहानी में गति प्रधान है, विचार प्रधान नहीं है। गति का एक विशेष अवयव है नाटकीयता! बिना कौतूहल जाग्रत किए कोई भी कहानी सफल नहीं कही जा सकती। गति में ही भावना के उतार-चढ़ाव हैं, विचारों में नहीं हैं।

फ़िल्म वालों का कहना है कि हिन्दी में मौलिक कहानियों की कमी है और उनका कहना सही भी है क्योंकि हिन्दी में ऐसी कहानियं की कमी अवश्य है जिनकी सफल फ़िल्में बनाई जा सकें। पर हिन्दी पर यह आरोप लगाते समय फ़िल्मवाले यह भूल जाते हैं कि हिन्दी में कहानियां भले ही न हों, कहानी-लेखक अवश्य हैं। फ़िल्म के लिए प्रत्येक सफल कहानी साहित्य की सफल कहानी नहीं होगी, और इसलिए ये लेखक फ़िल्म में सफल कहानी की क्षमता रखते हुए भी ऐसी कहानी नहीं लिखते। परिश्रम का अपव्यय तो कोई भी न करना चाहेगा। वास्तविकता तो यह है कि फ़िल्म में हिन्दी के कहानी लेखकों को पूछा ही नहीं जाता। कम से कम कहानीकार के रूप में। कहानीकारों को वे संवाद-लेखक बड़ी प्रसन्नता ते बना लेंगे, पर कहानी वे अपनी ही लेंगे।

फ़िल्म-व्यवसाय में कहानी, चित्रालेख और संवाद ये तीन विभाग सबसे अधिक महत्व के हैं, और फ़िल्म वालों के लिए इस ओर सतर्क रहना नितान्त आवश्यक है।

११

अभी तक मैंने फ़िल्म में 'संगीत' के भाग को जो नहीं लिया उसका एकमात्र कारण यह है कि संगीत का जो रूप आज-कल फ़िल्मी दुनिया ने बना लिया है, उसे मैं असत्य और दूषित मानता हूँ। चित्र में प्रभाव उत्पन्न करने वाला ध्वनि-संगीत तो फ़िल्मी संगठन का एक भाग है, पर जो हरेक चित्र में दर्जनों गाने गाये जाते हैं वह कला की विकृति है।

पर यह मेरा व्यक्तिगत मत है, जिससे बहुत लोग सहमत भी होंगे। इसके यह मतलब नहीं कि इस पुस्तक में मैं सगीत की उपेक्षा कर दूं क्योंकि संगीत आज के दिन चित्रों का आवश्यक भाग बन चुका है। मैंने आज तक कोई ऐसी भारतीय फ़िल्म नहीं देखी जिसमें गाने न हों।

फ़िल्मी दुनिया वाले किसी ऐसी फ़िल्म की कल्पना भी नहीं कर सकते जिसमें गाना न दिया जाय—उनके मत से ऐसा चित्र चल ही नहीं सकता।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से गाना एक शक्तिशाली कहानी के विकास में सहायक की अपेक्षा बाधक अधिक होता है। अक्सर एक अच्छी फ़िल्म में जब हमारा कौतूहल जाग उठता है और जब हम आगे की घटनाओं की बड़ी व्यग्रता के साथ प्रतीक्षा करते हैं, एक गाने का आ जाना बुरी तरह अखर जाता है। यही नहीं, कभी-कभी ऐसी-ऐसी जगह गाने डाल दिए जाते हैं कि तबियत झुंझला उठती है। प्रेमी से प्रेमिका का विछोह हुआ, और प्रेमिका ने गाना आरम्भ कर दिया नहीं। यही नहीं, प्रेमी महोदय भी ट्रेन के डिब्बे में बैठे हुए उस गाने की लाइनों को स्वर-ताल के साथ गा रहे हैं। और कभी-कभी तो खल-नायक भी जिसने यह विछोह करवा दिया, होटल में बैठा हुआ शराब पीता हुआ उसी गाने की पंक्तियां गा रहा है।

किसी के मरने पर गाना-गाना, किसी से मिलने पर गाना गाना—यानी जहां गाना गाया जा सकता है वहां और जहां गाना नहीं गाया जा सकता है वहां गाना गवा देना फ़िल्म वालों का एक पेशा-सा बन गया है।

पर संगीत की इस प्रचुरता के लिए मैं फ़िल्म वालों को अधिक दोषी नहीं ठहरा सकता। संगीत भारतवर्ष के जन-जीवन और मैं तो यहां तक कहने को तैयार हूँ, विश्व के जन-जीवन का एक महत्व-पूर्ण भाग रहा है। भारतवर्ष का आदि साहित्य गेय छन्दों में लिखा गया है। भावना को हमारे प्राचीन साहित्यकारों ने नव रसों में विभक्त कर दिया है। इस रस के उत्पादन में संगीत अत्यधिक सहायक माना जाता है। इसीलिए हमारे प्राचीन नाटकों में संगीत को प्रमुख स्थान मिला

है। साहित्यिक नाटकों से अलग हट कर जब हम जन-नाटकों पर आते हैं तब हमें वहां केवल संगीत ही मिलता है।

कहानी का विशुद्ध गद्य-कहानी के रूप में विकास पश्चिम की देन है, हमारे देश की आदि कहानियां तो छन्दोबद्ध कविता में ही मिलती हैं। सम्भवतः यही कारण है कि जब भारतवर्ष ने पाश्चात्य फ़िल्मों के आधार पर अपने यहां फ़िल्म व्यवसाय आरम्भ किया, तब संगीत फ़िल्मी कहानी का मुख्य भाग बन गया। भारतीय फ़िल्म-व्यवसाय में विशुद्ध कहानी को कभी नहीं अपनाया गया, कहानी के समकक्ष संगीत को भी प्रमुख स्थान दिया गया। इस सब का परिणाम यह हुआ कि संगीत आज के दिन फ़िल्म का एक आवश्यक और महत्व-पूर्ण अंग बन चुका है।

आज के वैज्ञानिक युग में नवीन मान्यताओं को स्वीकार करते हुए संगीत को कहानी का विरोधी तत्व माना जा सकता है, लेकिन प्राचीन परम्पराओं को उखाड़ कर नवीन मान्यताओं को स्थापित करने में समय लगेगा।

जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, भारतीय फ़िल्मों के संगीत को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

१ : ध्वनि-संगीत

२ : शब्द-संगीत या गाने।

जहां तक ध्वनि-संगीत का प्रश्न है नवीन मान्यताओं के अनुसार वह प्रत्येक फ़िल्मी कहानी का आवश्यक भाग है। यह ध्वनि-संगीत, पार्श्व-संगीत या बैक ग्राउण्ड म्यूज़िक के रूप में आता है। इस पार्श्व-संगीत की विशेषता यह है कि इसका अस्तित्व दर्शक को अनुभव नहीं होता, यह संगीत दृश्य की भावना को या रस को पूर्ण-रूप से प्रभावयुक्त बना देता है। इस संगीत में विशेषता यह है कि आंख और कान दोनों एकरस हो जाते है, और फ़िल्म वस्तुतः देखने की चीज़ है इसलिए सुनने का कार्य बिल्कुल गौण-रूप से चलता रहता है।

ध्वनि-संगीत की रूप-रेखा हमें वस्तुतः पाश्चात्य देशों से प्राप्त हुई है। आरकेस्ट्रा या वाद्य वृन्द की परम्परा भारतीय नहीं है, वह विदेशों में विकसित हुई है। इस ध्वनि-संगीत के साथ ही हमारे फ़िल्म-जगत् में पाश्चात्य-संगीत का समावेश हुआ। वे संगीत-निर्देशक जो ध्वनि-संगीत देने को नियुक्त हुए पाश्चात्य-संगीत में कुशल थे, उनका काम वाद्य वृन्द को संचालित करना था। प्रारम्भिक काल में प्रत्येक फ़िल्म कम्पनी के पास एक संगीत-निर्देशक हुआ करता था—उन दिनों फ़िल्मी कम्पनियां भी तो बहुत थोड़ी थीं—और प्रत्येक संगीत-निर्देशक अपनी रुचि एवं आवश्यकता के अनुसार अपना वाद्य वृन्द एकत्रित कर लेता था।

पर भारतीय परम्परा के अनुसार हमारे फ़िल्म जगत् में पार्श्व-संगीत उतने महत्व का न था जितना स्वर-संगीत था। प्रारम्भ में तो प्रत्येक नायक-नायिका को स्वयं गाना पड़ता था क्योंकि प्ले बैक की प्रथा का विकास बाद में हुआ है, और इसलिए अभिनेताओं के चुनावों में अभिनेता का गायक होना एक विशेष गुण माना जाता था। जो व्यक्ति गा नहीं सकता था, वह फ़िल्मों में प्रवेश के लिए अयोग्य समझा जाता था।

यहां हमें एक बात और स्पष्ट रूप से समझ लेनी पड़ेगी। यद्यपि ध्वनि-संगीत की परम्परा का विकास हमारे देश में नहीं हुआ, हमारे देश में स्वर-संगीत की एक सबल और सशक्त परम्परा रही है, और वह परम्परा अति प्राचीन है। जिसे हम शास्त्रीय संगीत कहते हैं वह बड़े वैज्ञानिक ढंग से विकसित हुआ है, और संगीत को व्याकरण के नियमों से बाँध लिया गया। राग-रागिनियों में समस्त संगीत विभाजित कर लिया गया और संगीत के घराने बन गए।

इस शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ हमारे देश में जन-संगीत की भी एक सशक्त परम्परा रही है। हमारे त्यौहारों में, उत्सवों में, घर के काम-काज में संगीत एक आवश्यक अंग हैं।

शास्त्रीय संगीत और लोक-संगीत का एक मध्यवर्ती संगीत भी समय-समय पर विकसित होता रहा और मिटता रहा। यह मध्यवर्ती सगीत बदलते हुए युग और बदलती हुई रुचि पर चलता है। और युग का प्रतिनिधित्व करने के कारण यह मध्यवर्ती संगीत सबसे अधिक महत्व का समझा जाता है। पर इस मध्यवर्ती सगीत का रूप लगातार बदलता रहता है।

जिस समय फिल्मों में स्वर-संगीत का समावेश हुआ, एक नवीन मध्यवर्ती संगीत की रचना का काम भी अनजाने ही प्रारम्भ हो गया। फ़िल्मों के आने के पहले नाटकों में भी यह मध्यवर्ती संगीत चल रहा था। अंगरेज़ी शासन के आने के पहले ठुमरी, दादरा और ग़ज़ल के रूप में यह मध्यवर्ती संगीत आया था। अंगरेज़ी गुलामी के समय ठुमरी-दादरे के रूप बदले, साथ ही पाश्चात्य संगीत का भी कुछ प्रभाव बंगाल में स्पष्ट रूप से आया। थियेटर की तर्ज़ों में भी पाश्चात्य प्रभाव देखा जा सकता है।

फ़िल्मों के आदि काल में जो संगीत आया वह अधिकांश में शास्त्रीय संगीत के आधार पर था। ठुमरी दादरे से लोग दूर हट गए थे, थियेटर का संगीत कुरुचिपूर्ण समझा जाता था, शब्द-संगीत भावना-प्रधान होना चाहिए, इस बात की आवश्यकता लोग अनुभव कर रहे थे। शास्त्रीय संगीत को आधार बना कर भावनामय संगीत का जन्म हो सकता है, इसका प्रयोग पहले-पहल कलकत्ता में किया गया। इसका कारण यह था कि पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क में बंगाल सबसे पहले आया और कलकत्ता में ही भावनामय संगीत के नवीन प्रयोग आरम्भ हुए।

हमारे फ़िल्मों में जो स्वर-संगीत प्रारम्भ हुआ उसका आधार भी शास्त्रीय-संगीत था। यह सरल शास्त्रीय संगीत लोगों को पसन्द आया क्योंकि इसमें वह शास्त्रीय स्वर-प्रसार न था जो कला का भाग न

होकर व्याकरण का ही भाग होता है। इस संगीत में शब्दों की उतनी महत्ता दी गई थी जितनी स्वरों को। यह संगीत फ़िल्म की कहानी से सम्बद्ध होता था इसलिए दृश्य विशेष की भावना को शब्दों में प्रकट करना आवश्यक था। बंगाल में बनने वाली फिल्मों में जो संगीत आया उसने देश में एक सर्वप्रिय मध्यवर्ती संगीत को स्थापित कर दिया।

भारतीय फिल्मों में संगीत की इस परम्परा के कारण शब्द-संगीत ध्वनि-संगीत से अधिक महत्व-पूर्ण हो गया है। वे संगीत-निर्देशक जो ध्वनि संगीत की रचना के लिए रक्खे गये थे, उनके ज़िम्मे शब्द-संगीत की रचना का काम आ पड़ा। वे संगीत-निर्देशक जो ध्वनि और शब्द दोनों ही प्रकार के संगीत की रचना कर सके, प्रायः पाश्चात्य संगीत से भिज्ञ होते थे। प्रारम्भिक काल में तो स्वर-संगीत में शास्त्रीय सहारा लिया गया पर बाद में जब फिल्म व्यवसाय का केन्द्र कलकत्ता के स्थान पर बम्बई बना, फिल्मी संगीत में परिवर्तन होने प्रारम्भ हो गए। पाश्चात्य परम्परा पर ध्वनि-संगीत देने वाला संगीत-निर्देशक नवीनता के नाम पर पाश्चात्य ढंग का स्वर-संगीत देने के लोभ में आ गया, और बम्बई के फिल्मों में पाश्चात्य प्रणाली पर संगीत की रचना प्रारम्भ हुई। समय-समय पर शास्त्रीय संगीत का आधार तो लिया जाता था क्योंकि शास्त्रीय संगीत तो स्वरों का अक्षय भण्डार है, पर नवीनता के नाम पर लोक-संगीत और मिश्रित-संगीत को ही प्रधानता मिली। इस मिश्रित संगीत में पाश्चात्य संगीत ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया शब्द-संगीत के साथ स्वर-संगीत वाले वाद्य वृन्द को प्रमुखता प्राप्त हुई। मैंने देखा है कि एक गाने के साथ बीस और पच्चीस तक साज़ बजते हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि फ़िल्मी-संगीत भी भावना-प्रधान न रह कर प्रदर्शन का संगीत हो गया। वैसे लोगों में यह धारणा मौजूद है कि फ़िल्मी संगीत भावना-प्रधान संगीत है, पर यह धारणा भ्रान्त है। जो भावना-मय है वह है गीत, जो विशेष दृश्यों की

विशेष भावना को उभारने के लिए लिखा जाता है, उस गीत की कविता को हम संगीत की भावना समझ बैठे हैं ।

वैसे फ़िल्मी संगीत का प्रदर्शन वाला संगीत बन जाना उन परिस्थितियों में स्वाभाविक ही है जिनमें आज का फ़िल्म-व्यवसाय पनप रहा है । जहाँ समस्त चित्र ही प्रदर्शन का चित्र है, वहाँ संगीत कब इस दोष से मुक्त रह सकता है ? कहना तो यह उचित होगा कि चित्र को प्रदर्शन का गुण अथवा अवगुण प्रदान करने में संगीत ने बहुत बड़ी सहायता की है । भड़कीली और भद्दी तर्जों पर गीत-लेखकों से गीत लिखाए जाते है, और मनुष्य के निम्न स्तर की भावनाओं को उन गानों द्वारा भड़का कर पैसा पैदा करने का प्रयत्न किया जाता है । फ़िल्मों में जो अश्लीलता आ घुसी है उसमें अश्लीलता का भार वहन करने में सिनेमा के गीत प्रधान हैं ।

भारतीय जनता के एक वर्ग में फ़िल्मी संगीत के प्रति जो प्रखर विरोध की भावना जाग उठी है उसे फ़िल्म वाले समझ नहीं पाते । पर फ़िल्म वालों को यह समझ लेना चाहिए कि यह वर्ग ही भारतीय जनता का जाग्रत वर्ग है, इसके हाथ में ही जनता का नेतृत्व है । अश्लीलता और अनैतिकता राष्ट्र को निर्बल बनाते हैं । उसका जनता में प्रदर्शन वर्जित है । जब हम गुलाम थे तब यह सब चलता था, विदेशी शासन को हमारी नैतिकता और हमारे चरित्र से कोई मतलब नहीं था । पर स्वतन्त्र देश यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि कुछ थोड़े से लोग अपनी कुरुचि की तुष्टि के लिए या रुपया पैदा करने के लिए कुरुचि-पूर्ण अश्लीलता का खुला प्रचार करे ।

१२

भारतीय फ़िल्मों में संगीत पर फ़िल्म के पूरे ख़र्चे पाँचवें से लेकर तीसरे भाग तक ख़र्च होता है ।

इस खर्च में निम्न लिखित विभाग हैं :

१ : संगीत निर्देशक

२ : गीत लेखक

३ : वाद्य—यन्त्र कलाकार

४ : संगीत की रिकार्डिंग

५ : प्ले बैक गायक

कुछ दिनों पहले तक एक अच्छी फ़िल्म में संगीत निर्देशक अकेले प्रायः पचास हज़ार रुपये तक ले लेते थे। मुझे याद है कि किसी समय तीन हज़ार रुपये तक एक गीत के लिए दिए गए हैं। प्ले बैक सिंगर—यानी वास्तव में गीत गाने वाला व्यक्ति एक हज़ार से पन्द्रह सौ रुपया तक एक गीत का ले लेता है। इस प्रकार उन दिनों कुछ फ़िल्मों में डेढ़ लाख रुपया केवल संगीत में ख़र्च हो जाया करता था।

आज-कल स्थिति बहुत बदल गई है। अब तो लोग फ़िल्मों में संगीत इसलिए देते हैं कि संगीत देना अनिवार्य है। पर संगीत की वर्तमान प्रभावहीनता को देखते हुए कोई संगीत पर अधिक ख़र्च नहीं करना चाहता। यदि एकाध जगह फ़िल्मी दुनिया में अधिक खर्च दिख जाय तो उसे नियम न समझ कर अपवाद ही माना जा सकता है।

संगीत का वह महत्व जो आज फ़िल्म की दुनिया में है, घटना आरम्भ हो चुका है, फिर भी कुछ दिनों तक तो संगीत का एक विशेष स्थान फ़िल्म की दुनिया में रहेगा ही। और इसलिए संगीत का निर्देशन एवं गीत लेखन के सम्बन्ध में यदि मैं अपने कुछ विचार स्पष्ट कर दूं तो मैं समझता हूँ अनुचित न होगा। फ़िल्मी-संगीत जन-संगीत है, उसकी सफलता जन की रुचि पर है। मैंने जन का कुछ थोड़ा-सा अध्ययन किया है, और मैं कह सकता हूँ कि सात्विकता जन के अधिक निकट है। जन किसी कला के रूप और व्याकरण को एक सीमा तक ही पसन्द कर सकता है, उसका तो एक इष्ट है भावना।

"वह परिश्रम जो विदेशी तर्ज़ों के ढूँढने में या एक आकर्षक तर्ज़ को बनाने में करना पड़ता है यदि उसका एक भाग भावना के व्यक्तीकरण पर किया जाय तो फ़िल्मी-संगीत में जीवन आ सकता है। यह कहना ग़लत है कि संगीत में भावना प्रमुखतः गीत का भाग है। और राग अथवा तर्ज़ केवल प्रदर्शन के साधन हैं। जब तक संगीत के स्वरों में भावना नहीं बोलती तब तक वह संगीत दूषित है, अल्पजीवी है। इस दूषित और अल्पजीवी संगीत को कुछ लोग कुछ समय के लिए भले ही पसन्द कर लें, पर ऐसे संगीत की सफलता अनिवार्य नहीं है। फ़िल्म के इतिहास से भी यह पता चलता है कि ऐसे संगीत की सफलता का अनुपात बहुत कम है।

भावना और सात्विकता हमेशा एक साथ चलते हैं। आज जितना संगीत आ रहा है उसमें भावना का नितान्त अभाव है और इसलिए उसमें सात्विकता का भी अभाव है। असल में भावना वहाँ ही नहीं है जहाँ संगीत की रचना होती है, अधिकांश संगीत-निर्देशक भावना के महत्व को ही नहीं जानते। जो मध्यवर्ती संगीत जन के लिए विकसित होता है उसका उद्देश्य ही भावना है। यह मध्यवर्ती संगीत भावनामय होना चाहिए, अन्यथा वह असफल होगा। इस मध्यवर्ती संगीत को कुत्सित भावना का साधन बनाना, और इस प्रकार समाज के लिए अकल्याणकारिणी बनाना अनैतिक है, समाज-विरोधी है। जन-कल्याण के नाम पर सामूहिक प्रदर्शन में उदात्त और पवित्र भावनाएं ही समाज द्वारा स्वीकृति हो सकती हैं। इसीलिए मैं भावना और सात्विकता को एकरूप समझता हूँ। मेरा अनुभव यह रहा है कि निम्न भावानाओं को जाग्रत करने वाली कला नष्ट हो जाती है। फ़िल्मी संगीत के ख़िलाफ़ जो एक सामूहिक और सर्वव्यापी प्रबल विरोध उठ खड़ा हुआ है, वह अकारण नहीं है।

सात्विकता मानव का एक स्वाभाविक तत्व है, उस सात्विकता के ज़रिये से आप मानव के हृदय को छू सकते हैं। ऐसी हालत में मेरी समझ में नहीं आता कि निम्न कोटि की भावना का सहारा लेकर क्यों संगीत रचना हो। सात्विकता का रस से कोई विरोध नहीं, सात्विकता रस के मामले में केवल मर्यादा का काम करती है। जहां मर्यादा नहीं है वहां पतन है। प्रत्येक इन्द्रिय की तुष्टि एक स्वाभाविक चीज़ है, पर उस तुष्टि में मर्यादा—यही सात्विकता का अवयव है।

फ़िल्मी संगीत को मर्यादा का बल लेना ही पड़ेगा। जो अश्लील है, जो भद्दा है जब संगीत में वह नहीं आ सकता, तब संगीत में उदात्त भावनाओं की आवश्यकता पड़ेगी। प्रत्येक फ़िल्म-निर्माता और संगीत निर्देशक को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए

१२

गीत की सफलता गीत-लेखक पर बहुत कुछ निर्भर है क्योंकि गीत में भावना का माध्यम केवल स्वर नहीं है, शब्द भी है। गीत के जो शब्द होते हैं हम उन्हें कविता कहेंगे क्योंकि मैं हर एक गाने को कविता प्रथम समझता हूँ।

गीत और कविता—दोनों का आधार भावना ही तो है। गीत की लय और कविता के छन्द एक ही तो हैं। गीत स्वयं कविता के अनेक रूपों में एक रूप है। और इसलिए प्रत्येक गीत को कवित्व मय होना अनिवार्य है। कविता का अर्थ दुरूहता नहीं है, यद्यपि दुरूह कविता लिखने की परम्परा बहुत प्राचीन है और कुछ आचार्यों एवं आलोचकों द्वारा प्रशंसित भी है। ऊंची से ऊंची कविता वह होती है जो सब लोगों को प्रभावित कर सके। गीत में बहुत उच्च कोटि की कविता ही आ सकती है और इसलिए मैं यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि बहुत कम लोग सफल गीत-लेखक बन सकते हैं।

फ़िल्मी दुनिया में गीतों की रचना भी बड़े विचित्र ढंग से होती है। गीत लेखक को बतला दिया जाता है कि किस स्थिति में किस चरित्र द्वारा एक विशेष गीत गाया जायगा। इससे गीत-लेखक को आसानी से पता चल जाता है कि वह गीत किस रस में होगा। अब उस विशेष स्थल के लिए गीत-लेखक को चार छः मुखड़े तैयार करने पड़ते हैं। प्रायः इन मुखड़ों में से एक मुखड़ा चुन लिया जाता है और गीत लेखक उस मुखड़े को लेकर गीत पूरा कर देता है। कभी-कभी तो सब के सब मुखड़े निर्माता को नापसन्द होते हैं, और गीत लेखक को लगातार एक सुन्दर मुखड़ा लिखने का प्रयत्न करना होता है।

इस स्थान पर गीत के मुखड़े पर भी मुझे कुछ कह देना पड़ेगा। मेरा अनुभव यह रहा है कि यदि गीत की प्रथम पंक्ति अच्छी बन गई तो आधा गीत वहीं बन गया। गीत की पहली पंक्ति ही गीत का मुखड़ा कहलाती है और इसी मुखड़े में गीत की जान होती है। यदि किसी गीत का मुखड़ा अच्छा नहीं है, तो उस गीत में चाहे कितनी अच्छी कविता हो वह सफल नहीं होगा। फ़िल्मी-दुनिया के हरेक गीत-लेखक को मुखड़े का महत्व समझ लेना चाहिए। पूरा गीत लिखना अक्सर व्यर्थ परिश्रम साबित होता है क्योंकि गीत की पसन्दगी या नापसन्दगी मुखड़े पर ही निर्भर है। मैं तो समझता हूँ कि जो फ़िल्म में गीत लिखना अपना व्यवसाय बनाना चाहते हों उन्हें केवल मुखड़ों पर सोचना चाहिए और इन मुखड़ों को एक कापी पर लिखते जाना चाहिए।

गीतों की जितनी तर्ज़ें बना करती हैं वे सब मुखड़ों पर ही बनती हैं, गीत और सगीत—दोनों में ही मुखड़े को ही प्रधानता मिलती है। गीत की समस्त कविता मुखड़े में है—गीत का बाद वाला अंश तो उस मुखड़े का पूरक भर होता है। यही हालत तर्ज़ की भी है। संगीत के मुखड़े को ही तर्ज़ माना जाता है, बाद का जो संगीत होता है वह भी पूरक कहा जा सकता है।

आकर्षक मुखड़ों के लोभ में गीत-लेखक प्रायः अश्लीलता और कुरुचि का सहारा ले लेता है। पर यही गीत-लेखक की कमज़ोरी है। गीत-लेखक को गीत लिखते समय यह सोच लेना चाहिए कि क्या वह अपनी मां, बहिन या लड़की के सामने निःसकोच भाव से अपना गीत गा सकता है। उसका गीत हर जगह सुना जायगा, और अगर वह सफल है तो हर जगह गाया या गुनगुनाया जायगा। हो सकता है कि निर्देशक और निमर्ता कुरुचिपूर्ण और अश्लील गानों की मांग करें, पर गात लेखक का कर्तव्य है कि वह ऐसे गीत लिखने से इन्कार कर दे। फ़िल्म जगत् में वह अपनी कला-कृति बेचने जाता है, अपनी मनुष्यता तो बेचने नहीं जाता।

आज कल फिल्मों में जो गीत आ रहे हैं उनमें उर्दू भाषा और उर्दू-सस्कृति की झलक स्पष्ट है। इसका कारण यह है कि फिल्मों में अधिकांश गीत-लेखक उर्दू के हैं। सगीत की भाषा अभी तक हिन्दी रही है यद्यपि अधिकांश विशिष्ट सगीतज्ञ मुसलमान रहे हैं। इन सगीत-यज्ञों के घराने हैं। पर ये उस्ताद जब कभी गाना गाते हैं तो हिन्दी के ही गाने गाते हैं। उर्दू केवल ग़ज़लों में ही चलती रही है, और ग़ज़ल को शास्त्रीय सगीत के इन आचार्यों ने कभी महत्व प्रदान नहीं किया।

फिल्मों में भी प्रारम्भ में ग़ज़लों को प्रधानता नहीं मिल सकी। पर इन दिनों फिल्मों में ग़ज़लें प्रचुरता के साथ आने लगी हैं, जैसा में पहले कह चुका हूँ ग़ज़ल भारतीय सस्कृति की चीज़ नहीं है, और इसलिए जब नाथिक या नायका ग़ज़ल गा कर अपनी भावना व्यक्त करता है तो कुछ अजीब-सा लगता है।

फिल्मी संगीत में यह उर्दू-सस्कृति का प्रभाव अस्थायी है क्योंकि यह अप्राकृतिक है। फिल्मी संगीत-लेखकों को गीत का ही सहारा लेना पड़ेगा। गीतों में भाषा की क्लिष्टता का प्रश्न उठ पड़ता है।

प्राय: यह कहा जाता है कि गीतों की भाषा सरल होनी चाहिए। पर जहाँ कविता आ जाती है वहाँ भाषा का सरल बना रहना असम्भव होता है। बोल-चाल की भाषा कविता की भाषा नहीं होती—हर एक आदमी यह जानता है। गीत में कविता प्रधान है, और इसलिए गीत की भाषा थोड़ी-बहुत क्लिष्ट हो ही जाएगी। हिन्दी के अच्छे गीत-लेखकों से फ़िल्मों वालों को यह शिकायत है कि उनके गीतों में संस्कृत के शब्दों की प्रचुरता है। पर मेरी समझ में नहीं आता कि इस तरह की शिकायत क्यों की जाए? हमारे देश की भाषा हिन्दी है और हिन्दी संस्कृत के आधार पर बनी है। आज फ़िल्म में जो लोग हैं वे उस युग के हैं जब भारत ग़ुलाम था और हिन्दुस्तान का विभाजन नहीं हुआ था। पाकिस्तान अपने साथ हमारे देश से उर्दू भाषा और उर्दू की संस्कृति को ले गया। आज समस्त देश के नवयुवक हिन्दी में शिक्षा पा रहे हैं।

"हिन्दी लोगों की समझ में नहीं आती" यह कहना मिथ्या का सहारा लेना है। हमारे गीतों की भाषा संस्कृत-निष्ठ हिन्दी होगी—संस्कृत ही हिन्दी को बंगाली, तेलगू, मराठी, गुजराती, कन्नड़ आदि भाषाओं के निकट ला सकती है। सूर, तुलसी, मीरा के गीत कौन नहीं समझता, कौन नहीं पसन्द करता? भाषा को सरल बनाने के प्रयत्न में गीत का कवित्व ही ग़ायब कर दिया जाय—यह बात ही मेरी समझ में नहीं आती। मुझे तो उर्दू के उन लेखकों से, जो फ़िल्मों में काम कर रहे हैं, यह कहना है कि वे अपनी भाषा बदलें, अपनी मान्यता बदलें। युग बदल चुका है। युग के साथ उन्हें अगर जीवित रहना है तो उन्हें इसके लिए परिश्रम करना पड़ेगा।

१८

फ़िल्मी संगीत की ज़िम्मेदारी, गीत-लेखक से कुछ अधिक ही संगीत निर्देशक पर है।

संगीत-निर्देशक में संगीत-ज्ञान के साथ-साथ कविता का भी ज्ञान होना चाहिए। फ़िल्मी संगीत फ़िल्म के किसी दृश्य विशेष की भावना का कवित्वमय निरूपण है। जो व्यक्ति भावना-मय कवित्व से अनभिज्ञ है वह संगीत का निर्देशन कर ही नहीं सकता।

'भावना-हीन' संगीत की बात जितनी शास्त्रीय संगीत पर लागू है उतनी ही फ़िल्म संगीत पर भी लागू है। शास्त्रीय संगीत संगीत की दृष्टि से बहुत ऊँचा है, यह हर एक को मानना पड़ेगा, पर उस संगीत की कमज़ोरी भावना में है। यदि उस संगीत में कलाकार भावना भर सके तो वह सर्वश्रेष्ठ संगीत होगा। फिर शास्त्रीय संगीत में तो स्वर प्रधान है, शब्द प्रधान नहीं है, इसलिए वहाँ तो कलाकार की स्वर-साधना का बहुत बड़ा प्रश्न उठ खड़ा होता है।

फ़िल्मी संगीत की तर्ज़ संगीत-निर्देशक बनाते हैं। फ़िल्मी गीत में भावना मौजूद है, तर्ज़ों में उस भावना का आना आवश्यक है। गाने-वाला तो बँधी हुई तर्ज़ गाता है, गानेवाले को यह अधिकार नहीं है कि स्वयं स्वरों के कुछ परिवर्तन से वह अपनी भावना को व्यक्त कर सके। यह सब काम संगीत-निर्देशक का है।

भारतीय-फ़िल्मों के अधिकांश संगीत-निर्देशक संगीत में पारंगत नहीं हैं। वह नई तर्ज़ें बनाने के लिए फ़िल्मों की घिसी हुई पुरानी तर्ज़ों का सहारा लेते हैं। इसका फल यह होता है कि उनकी तर्ज़ें प्राणहीन या प्रभावहीन होती हैं।

संगीत-निर्देशक विविध स्रोतों से गाने की तर्जें लिया करते हैं। प्रारम्भ में ये तर्ज़ें शास्त्रीय संगीत से ली गईं—बाद में शास्त्रीय संगीत और पाश्चात्य-संगीत का मिश्रण चला। इसके बाद लोकगीतों की बारी आई। विशुद्ध विदेशी-संगीत को आधार बना कर नई तर्ज़ें बनाई गईं।

मेरा कुछ ऐसा अनुभव है कि शास्त्रीय संगीत एक ऐसा अक्षय भण्डार है जिससे नई तर्जें ली जा सकती हैं, और इसलिए मैं समझता हूँ कि प्रत्येक संगीत-निर्देशक में शास्त्रीय संगीत का अच्छा ज्ञान आवश्यक है। जिस मनुष्य में संगीत की साधना नहीं, वह संगीत-निर्देशक कैसे बन सकता है? यह भी मान लिया जाय कि शास्त्रीय संगीत का व्याकरण है, पर व्याकरण का ज्ञान संगीत-निर्देशक में होना ही चाहिए।

संगीत-निर्देशन का काम वास्तव में बहुत कठिन काम है। इस संगीत-निर्देशक को कविता का ज्ञान होना चाहिए, शास्त्रीय संगीत का ज्ञान होना चाहिए और पार्श्व-संगीत या बैक ग्राउण्ड म्यूज़िक देने के लिए पाश्चात्य-संगीत का भी कुछ कुछ ज्ञान होना चाहिए।

१५

संगीत का तीसरा भाग है गीत गाने वाला। फ़िल्मों में जो गाने गाए जाते हैं वह फ़िल्म में दिखने वाले चरित्रों द्वारा नहीं बल्कि किन्हीं दूसरों द्वारा जिन्हें हम तस्वीर में नहीं देखते।

नियम यह है कि पहले गाना रिकार्ड कर लिया जाता है। जब हम दृश्य का चित्र लेने लगते हैं हम उस गाने को बजाते है और अभिनेता उसे गाता है। वह ठीक वैसा ही गाता है जैसा कि रिकार्ड में गाना है। पर चित्र लेते समय हम ध्वनि अंकित नहीं करते : हम तो अभिनेता के होठों की गति अंकित कर लेते हैं। इस प्रकार लगता यह है कि स्वयं अभिनेता गा रहा है।

यह तै है कि जब हम अभिनेता के अलावा किसी दूसरे से गाना गवाते हैं तो हम अच्छे से अच्छे गाने वाले को ही गाने के लिए चुनेंगे। इन गाने वालों को हम प्ले-बैक सिंगर्स कहते हैं, और एक एक गाने पर औसत से हज़ार डेढ़ हज़ार रुपया मिलता है।

किस प्ले-बैक सिंगर की आवाज़ किस अभिनेता से मिलती है, निर्माता को इसका ज्ञान होना चाहिए। कभी-कभी बोलने और गाने की आवाज़ में बहुत अधिक अन्तर मालूम पड़ता है, जो दोष है।

फ़िल्म के कुछ अभिनेता स्वयं गाते हैं और मैं समझता हूँ कि अभिनेता का स्वयं गाना अधिक अच्छा है। पर यह तभी सम्भव होगा जब हर एक फ़िल्म में गाने न आवें। गाने के फ़िल्म ही अलग हों और उनके अभिनेता भी अलग हों। इसका एक कारण यह है कि जिस भावना के साथ अभिनेता स्वयं गाना गा सकता है उस भावना के साथ प्ले-बैक सिंगर गाना नहीं गा सकता।

वर्तमान परिस्थिति में यह नितान्त आवश्यक है कि प्ले-बैक सिंगर को गीत की भावना ग्रहण कर लेनी चाहिए। जो स्वर की भावना है वह गीत में प्रधान है।

वाद्य यन्त्र बजाने वालों के सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना। वे लोग तो संगीत-निर्देशक के निर्देशन पर ही चलते हैं, और उन्हें उस निर्देशन पर चलना भी चाहिए। इन लोगों में कला है, ये लोग प्रायः स्वयं संगीत निर्देशक के निर्देशन में भी सहायता कर देते हैं, और अक्सर यही लोग आगे चल कर स्वयं संगीत-निर्देशक बन जाते हैं। इसलिए उनके लिए यह आवश्यक है कि ये संयम से काम लें।

१६

फ़िल्म की दुनिया कलाकारों की दुनिया है और कलाकारों में अराजकता नाम का एक अवगुण अक्सर देखने में आता है। वैसे प्रत्येक रचनात्मक कलाकार स्वतन्त्र-प्रकृति का व्यक्ति होता है, पर स्वतंत्रता और अराजकता में अन्तर है। जहाँ स्वतन्त्रता में एक प्रकार का संयम है, प्राणों में बल है, असत् या अकल्याण के आगे न झुकने की

प्रवृत्ति है वहाँ अराजकता में असंयम है, चरित्र-हीनता है और असत् एवं अकल्याण में स्वयं बहने की प्रवृत्ति है। फ़िल्मी दुनिया के कलाकारों में अराजकता और असंयम के ही दर्शन होते हैं, कहीं भी तो स्वतन्त्र-वृत्ति तथा संयम नहीं देखने को मिलते। इसका फ़िल्म जगत में हर तरफ़ एक भयानक अभाव है।

और इसका एकमात्र कारण यह है कि फ़िल्मी दुनिया की मान्यताएं बिलकुल दूसरी हैं। वह दुनिया हमारी साधारण दुनिया से अलग है, जहाँ नैतिकता नहीं है, विश्वास नहीं है, भावना नहीं है। उस दुनिया का एकमात्र देवता पैसा है। मैंने वहाँ अनुभव किया है कि वहाँ हर एक व्यक्ति लाखों में सोचता है, लाखों की बात करता है—चाहे वह साधारण कोटि का कैमरा असिस्टेन्ट हो या एक्स्ट्रा में काम करने वाला हो। दूर जाने की ज़रूरत नहीं है, स्वयं मैं जब फ़िल्मी दुनिया से वापिस लौटा, मेरा बीस हज़ार रुपया वहाँ दूसरों के पास छूट गया—यानी डूब गया। और अपने साथ मैं वहाँ से कुछ नहीं ला पाया। यह रुपया जितनी आसानी से मिलता है उतनी बेरहमी के साथ ख़र्च होता है।

"फ़िल्मी दुनिया में बहुत हल्के क़िस्म के लोग मिलेंगे"—एक बार मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा था। उन मित्र का यह कथन, मैंने बाद में देखा, बिलकुल ठीक था। ऊँचा से ऊँचा आदमी वहां जाकर हल्के क़िस्म का आदमी बन जाता है, क्योंकि वहाँ धन के देवता का साम्राज्य है। धन का गुण है ख़रीदना, दीन, ईमान, चरित्र, आत्मा—सभी कुछ यह ख़रीद सकता है। वैसे शायद यह धन का देवता हमारी आज की दुनिया का ही देवता बन चुका है, पर इस आज की दुनिया में इधर-उधर भावना के पुजारियों का एक दल जो मौजूद है और जो समय-समय पर इस धन के देवता को चुनौती देता रहता है उससे इस दुनिया का रूप इतना विकृत नहीं हो पाया है जितना फ़िल्मी दुनिया का विकृत हो चुका है।

कलाकार भावना का प्राणी है। यह कलाकार जब धन के देवता का पुजारी बन जाता है तब इसका रूप भयानक तौर से विकृत हो जाता है। सम्पन्नता अथवा असम्पन्नता—दोनों ही अवस्थाओं में फ़िल्म की दुनिया कलाकारों के लिए एक भयानक अभिशाप के सदृश है। बड़े-बड़े कलाकारों की प्रतिभा वहाँ नष्ट हो जाती है—वहाँ आदमी पहचाना नहीं जाता।

फ़िल्मी दुनिया के लोगों को अपनी भावनाएं बदलनी होंगी। मनुष्य भावना का प्राणी है—धन को तो मनुष्य ने जन्म दिया है। यह झूठा देवता जिसकी रचना स्वय मनुष्य ने की है, इस देवता को नष्ट करके भावना के सच्चे देवता को वहाँ फिर से स्थापित करना होगा। और कलाकार यह कर सकता है। कलाकार स्वतन्त्र वृत्ति का होता है, यदि वह साधना और संयम से काम ले तो वह क्या नहीं कर सकता? जो स्वयं सृष्टा है वह झूठी मान्यताओं को नष्ट करके नवीन मान्यताओं को पुनः स्थावित कर सकता है।

और इसके लिए कलाकारों में बहुत में बड़े संयम की आवश्यकता होगी। मैं जानता हूँ कि शक्ति और सत्ता उन लोगों के हाथ में है जो चरित्र का आदर नहीं करते। कलाकार वहाँ धन पाने के लिए जाते हैं, और धन पाने के लिए वह अपना सब कुछ बेचने को बाध्य होते हैं। ऐसी अवस्था में स्वभावतः कलाकार निःशक्त और प्रभावहीन हो जाता है। इसीलिए जो ऊँचे क़िस्म के कलाकार होते हैं, वे या तो उधर जाते ही नहीं, और अगर जाते भी हैं तो वहाँ से बहुत जल्दी वापस आ जाते हैं।

मुझे तो अपनी बात नवीन कलाकारों से कहनी है। विवशताओं से प्रेरित होकर उन्हें काम करना पड़ता है तो वे काम करें, पर अपने अन्दर वाले चरित्र की उन्हें रक्षा करनी चाहिए। यदि तीस या चालीस

वासवदत्ता

चित्रालेख

चित्रालेख

प्रथम दृश्य

क्रम दर्शन

स्थान : मथुरा की एक सड़क] [चरित्र : वासवदत्ता, सोमदत्त, भीड़

[मथुरा के राजमार्ग पर एक जुलूस निकल रहा है। जुलूस छोटा है। शंख और घड़ियाल बजाते हुए ब्राह्मण आगे-आगे हैं। मंगल-गान करती हुई युवतियां पीछे हैं। उन युवतियों से घिरा हुआ एक रथ चल रहा है—उस रथ पर वासवदत्ता है जो स्वयं रथ का संचालन कर रही है। रथ के पार्श्व में वासवदत्ता का मातुल सोमदत्त पैदल चल रहा है।

राजमार्ग पर दर्शकों की भीड़ एकत्रित है। इन दर्शकों में अधिकांश युवक हैं। स्त्री-पुरुषों की यह भीड़ वासवदत्ता का जयनाद से स्वागत करती है।]

आवाज़ें

स्वागत सुन्दरी वासवदत्ता ! सुन्दरी वासवदत्ता की जय !

[एक स्थान पर नगर के प्रमुख व्यापारी और जौहरी खड़े हैं। यह स्थान विशेष रूप से वन्दनवारों से अलंकृत है। वासवदत्ता अपना रथ वहां रोक देती है। रथ के रुकते ही जुलूस भी रुक जाता है। एक धनाढ्य छैला जिसके हाथ में गुलाब के फूलों का एक गुलदस्ता है, आगे बढ़ता है।]

छैला

पारस देश के गुलाबों की यह भेंट स्वीकार हो !

वासवदत्ता

[फूलों को लेकर सूंघते हुए]

कितने सुन्दर हैं !

एक युवक

वासवदत्ता की सुन्दरता से लजा कर इनका गुलाबीपन निखर उठा है !

वासवदत्ता

तुम कवि हो क्या ? कभी राजभवन में आना ।

एक जौहरी

यह हीरे का कंकण मैं मद्र प्रदेश से सुन्दरी वासवदत्ता के लिए लाया हूँ ।

[वासवदत्ता कंकण को देखती है । मुसकरा कर वह उन्हें उठाती है और अपने हाथ में पहन लेती है ।]

वासवदत्ता

मातुल !

सोमदत्त

कल राजभवन में आकर मुझसे मिलना ।

एक व्यापारी

यह मानिक का कंठहार देवी की भेंट है !

[वासवदत्ता कंठहार को छू देती है, पर उसे उठाती नहीं ।]

वासवदत्ता

धन्यवाद !

[स्त्री-पुरुष पुष्प-हार भेंट देने के लिए आगे बढ़ते हैं। सोमदत्त उन मालाओं की भेंट को स्वीकार करता है। दूर से कुछ मनचले युवक फूलों के हार फेंकते हैं—वासवदत्ता उन्हें रोकती है। इस प्रकार यह विनोद बढ़ता है। एकाएक एक गम्भीर और संगीतमय स्वर-लहरी वह सुनती है—यह स्वर-लहरी सुन कर वह चौंक सी उठती है। वह अपने चारों ओर वाले वातावरण को भूल कर जिधर से वह संगीत आ रहा है उस ओर देखती है।] : काट

दूसरा दृश्य

काट

स्थान : राजमार्ग और चौराहा] [चरित्र : उपगुप्त

[प्रथम दृश्य के राजमार्ग का दूसरा भाग। दूसरे मार्ग से भिक्षु उपगुप्त गाता हुआ इस राजमार्ग पर आता है। चौराहे पर कुछ रुक कर वह एक छन्द कहता है और फिर इस राजमार्ग को पार करके दूसरी ओर चला जाता है]

उपगुप्त का गान

यह अग जग पीड़ित है दुख से, दया करो तुम दया करो
रूप और यौवन के मद का एक क्षणिक आवेश यहां
जरा मरण की इस दुनिया में है अमरों का देश कहां?
भोग विलास, मान औ वैभव—पल भर का यह खेल अरे!
जीवन का क्रम तिल-तिल मिटना, करुणा एक अशेष यहां।
अपने मानस की अनजानी गहराई में तुम उतरो।
यह अग जग पीड़ित अति दुख से, दया करो, तुम दया करो।

[उपगुप्त बिना दाहिने बाएं देखे चला जाता है]

: काट

तीसरा दृश्य

काट

स्थान : जैसा प्रथम दृश्य में] [चरित्र : जैसे प्रथम दृश्य में

[वासवदत्ता ध्यान से उपगुप्त के गान को सुन रही है। उस गान की अन्तिम पंक्तियां उसके कानों में पड़ती हैं और संगीत धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है। वासवदत्ता की भृकुटि तन जाती है—अपने पार्श्व में खड़े हुए लोगों की ओर वह घूमती है।]

वासवदत्ता

सुन्दरता का तिरस्कार करके बिना इस ओर देखे, चले जाने वाला यह युवा भिक्षु कौन है ?

एक सम्भ्रान्त वृद्ध

आप उन्हें नहीं जानतीं देवि ! वह परम तेजस्वी और संयमी भिक्षु उपगुप्त हैं।

[वासवदत्ता के मुख पर कुटिल मुस्कुराहट नाच उठती है।]

वासवदत्ता

परम तेजस्वी और संयमी भिक्षु उपगुप्त। क्या कभी उस भिक्षु को प्रेम की भिक्षा मिलने में निराशा हुई है ?

[वासवदत्ता अपने ही व्यंग पर ज़ोर से हंस पड़ती है और घोड़ों की रास खींच देती है। रथ चलने लगता है—मंगल गान आरम्भ हो जाता है और शंख घड़ियाल बजने लगते हैं।]

: परिवर्तन

चौथा दृश्य

परिवर्तन

स्थान : एक विशालमन्दिर [चरित्र : प्रथम दृश्य का जुलूस और आंगन]

[जुलूस एक विस्तृत प्रांगण में पहुँच कर रुकता है। वासवदत्ता रथ से उतरती है। वह मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ती है—साथ में युवतियां हैं। मंगल-गान चलता रहता है]

: काट

पांचवां दृश्य

काट

स्थान : मन्दिर का भीतरी भाग] [चरित्र : पुजारी, वासवदत्ता और युवतियां

[काली की एक विशालकाय मूर्ति के सामने पुजारी नतमस्तक बैठा कह रहा है]

पुजारी

माता—मुझे आशीर्वाद दो कि मैं बौद्धों के बढ़ते हुए प्रभाव से महाराज क्षेमेन्द्र को मुक्त करवा सकूँ। यज्ञ और बलि की व्यवस्था पुनः स्थापित हो—तुम्हारी जय हो।

[मंगल-गान का स्वर पुजारी के कानों में आता है। वह उठ कर पीछे देखता है। वासवदत्ता और युवतियों से घिरी हुई मन्दिर में प्रवेश कर रही है।]

पुजारी

देवि वासवदत्ता—तुम्हें माता का आशीर्वाद। आरती का समय हो रहा है—

[पुजारी घंटे बजाता है और प्रार्थना आरम्भ करता है। इस प्रार्थना-गायन पर वासवदत्ता आरती का थाल लेकर नृत्य करती है।]

पूजा गायन

विदित देवी, विदिता हो तुव अविरल केश सुहन्ती
एकानेक सहस को धारिनि जरि रंगा पुरनन्ती !
काजल रूप तुव काली कहिए—उजल रूप तुव बानी
रवि मंडल परचंडा कहिए, गंगा कहिए पानी !
आदि शक्ति तुव आदि चेतना—आदि सृजन की लीला
तुव ध्रुव सत्य सनातन अविचल, तू अक्षय गतिशीला !

[वासवदत्ता जिस समय नृत्य करती है, उसके सम्मुख बेर बेर काली की प्रतिमा के स्थान पर उपगुप्त की प्रतिमा आ जाती है। वासवदत्ता की आरती का थाल हाथ से छूट कर गिर पड़ता है। सब लोग अवाक् होकर देखने लगते हैं—वासवदत्ता चुपचाप खड़ी होकर आरती के थाल की ओर देखती है। पुजारी आगे बढ़ता है]

पुजारी

देवि वासवदत्ता—माता ने तुम्हारी पूजा अस्वीकार कर दी है !

वासवदत्ता

हां पुजारी !

पुजारी

देवि, बौद्धों के प्रभाव में आ कर जो महाराज ने यज्ञ और बलिदान को बन्द करवा दिया है—माता उससे क्षुब्ध हैं। तुम्हें माता का कुछ आदेश है देवि !

वासवदत्ता

माता के आदेश को मैं जानती हूँ पुजारी ! सब लोग जायं यहां से—माता के प्रति मुझसे जो अपराध हो गया है मैं उसकी क्षमा मांगूगी !

पुजारी

तुम्हारी ओर से मैं क्षमा-प्रार्थना कर लूंगा देवि !

वासवदत्ता

मैं आज्ञा देती हूँ कि तुम सब जाओ यहां से ! मातुल—मैं अकेली भवन तक आ जाऊंगी। मेरी प्रतीक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं।

सोमदत्त

जैसी तुम्हारी इच्छा—बेटी, लेकिन विलम्ब मत करना।

[सब लोगों का प्रस्थान। वासवदत्ता मूर्ति के सामने बैठ कर ध्यानस्थ होती है।]

परिवर्तन

छठा दृश्य

परिवर्तन

[चरित्र : वासवदत्ता

स्थान : पांचवे दृश्य वाला]

[वासवदत्ता ध्यानस्थ बैठी है। चारों ओर गहन अन्धकार है, केवल एक दीपक काली की प्रतिमा के सामने है। मध्य रात्रि का घंटा बजता है। वासवदत्ता अपने नेत्र खोलती है। दीपक को अपने हाथ में लेकर वह वहां से चलती है।]

परिवर्तन

सातवां दृश्य

परिवर्तन

स्थान : मथुरा नगर का एक मार्ग] [चरित्र : वासवदत्ता, उपगुप्त

[वासवदत्ता अपने हाथ में दीपक लिये हुए मार्ग पर चल रही है। चारों ओर निबिड़ अन्धकार और गहरा सन्नाटा है। वासवदत्ता का पैर किसी चीज़ पर पड़ता है...वह चौंक उठती है। दीपक की लौ विकम्पित होती है पर वासवदत्ता सम्हल जाती है। वह नीचे देखती है...भिक्षु उपगुप्त पृथ्वी पर बैठा हुआ है]

उपगुप्त

चोट तो नहीं लगी देवि ?

वासवदत्ता

भिक्षु उपगुप्त ! तुम यहां, इस पृथ्वी पर सो रहे हो ?

उपगुप्त

पृथ्वी मेरी माता है देवि ! माता की गोद में विश्राम करने पर आश्चर्य क्यों होता है ?

वासवदत्ता

भिक्षु ! भगवान् ने तुम्हारा यह कोमल और सुकुमार शरीर इस कठोर भूमि पर लेटने को नहीं बनाया है।

उपगुप्त

देवि ! यह शरीर उसी धूल से बना है जिससे पृथ्वी बनी है। फिर कोमलता और कठोरता में कोई भेद नहीं रह जाता।

वासवदत्ता

भिक्षु उपगुप्त ! नर्तकी वासवदत्ता तुम्हारे ज्ञान के आगे मस्तक झुकाती है। उठो, मेरे साथ चलो और मुझे ज्ञान दो। आज रात तुम मेरे अतिथि बनो।

[उपगुप्त उठ कर वासवदत्ता के सामने खड़ा होता है। वह वासवदत्ता की ओर ध्यान से देखता है...उसकी आंखें वासवदत्ता की आंखों से मिलती हैं और सहसा उपगुप्त की स्वाभाविक मुसकान लोप हो जाती है]

उपगुप्त

नर्तकी वासवदत्ता ! तृष्णा की आग से जलती हुई तुम्हारी सांसें कह रही हैं कि तुम्हें ज्ञान नहीं चाहिए। वासना की मदिरा से मतवाली तुम्हारी आंखों में जो निमंत्रण है, उसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता।

[उपगुप्त अपना अन्तिम वाक्य कहते हुए एक कदम पीछे हटता है। वासवदत्ता उसी समय एक कदम आगे बढ़ती है]

वासवदत्ता

भिक्षु ! हटो मत, मेरे साथ चलो। आज रात मुझे तुम्हारी आवश्यकता है।

[दूर पर बिजली चमकती है और बादल की गरज सुनाई पड़ती है]

वासवदत्ता

देखो, वर्षा के प्रथम घन उमड़ रहे हैं। मेरे कान्त महाराज क्षेमेन्द्र नगर के बाहर गए हुए हैं, मेरी सेज सूनी पड़ी है। बादल गरज रहे हैं, बिजली चमक रही है। संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी वासवदत्ता भिक्षु उपगुप्त से प्रणय की भिक्षा मांग रही है। मेरे साथ चलो भिक्षु !

उपगुप्त

नहीं नर्तकी...तुम्हें आज मेरी आवश्यकता नहीं है। जिस दिन तुम्हें मेरी आवश्यकता होगी उस दिन मैं तुम्हारे पास बिना बुलाए आऊंगा।

[उपगुप्त पीछे मुड़ कर चल देता है। वासवदत्ता कांपते हुए स्वर में पुकारती है]

वासवदत्ता

रुको भिक्षु, मेरे ऊपर दया करो।

[उपगुप्त रुक कर पीछे देखता है......पर आगे नहीं बढ़ता]

उपगुप्त

वर्षा के प्रथम घन उमड़ रहे हैं और मुझे दूर जाना है। नर्तकी वासवदत्ता, मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि एक दिन मैं अवश्य तुम्हारे पास आऊंगा। लेकिन आज नहीं।

[बादल गरजता है, बिजली चमकती है। उपगुप्त चल पड़ता है... गाते हुए। वासवदत्ता के हाथ का दीपक बुझ जाता है।]

उपगुप्त का गान

अन्धकार है आगे पीछे, पथ नितान्त अनजाना है !
किसने यहां नियति को जाना, या निज को पहचाना है !
अपने प्राणों के प्रकाश पर, तुम विश्वास करो मानव !
मार्ग बनाने को ही तुमको अपना पैर उठाना है !
तुम चेतन हो, और सत्य हो, तुम अपने ही में विचरो !
यह अग जग पीडित अति दुख से, दया करो तुम दया करो !

[वासवदत्ता मर्माहत और स्तम्भित सी इस गाने को खड़ी सुन रही है ।]

क्रम लोप

आठवां दृश्य

क्रम दर्शन

स्थान : ग्राम का मार्ग] [चरित्र : मारुति, अन्य कई व्यक्ति

[सड़क के किनारे एक बड़ा कारवां पड़ा है ! आकाश पर बादल घिरे हैं और हलकी हलकी बूंदें पड़ रही हैं । मारुति सिर पर छाता लगाए हुए लोगों को पुकार रहा है ।]

मारुति

जल्दी से ढांको इन ऊंटों को मोमजामे से !

एक व्यक्ति

क्यों चाचा ?

मारुति

मूर्ख कहीं के ! जानते हो, पांच वर्ष पहले हम दो सौ ऊंटों पर नमक लाद कर बंग से अंग आ रहे थे। इसी तरह पानी बरसा। तो जब

वर्षा समाप्त हुई तो देखते क्या हैं कि आधा नमक पानी में घुल कर बह गया। और इस बार हम लिए चल रहे हैं सुवर्ण की मुद्राएं। अगर ये घुल गईं तो नाश हो जायगा नाश!

दूसरा व्यक्ति

वाह चाचा, बड़ी दूर की सूझी।

मारुति

अरे हमें समझ क्या रक्खा है! हम हैं मारुति, नगर सेठ धनराज के चचा! भूत, भविष्य, वर्तमान कुछ नहीं बचा है हमसे! देखा, कल कहा था न कि...

"सूकबार की बादरी रही सनीचर छाय
चचा मारुती कह रहे बिन बरसे ना जाय!"

तो कल शनिश्चर था और आज वर्षा प्रारम्भ हो गई!

तीसरा व्यक्ति

चचा, किस शास्त्र से यह ज्ञान सीखा है?

मारुति

सीखा नहीं है...उड़ा लाए हम सीधे भगवान् के यहां से!

[हवा का एक गहरा झोंका...इस झोंके से मारुति के हाथ का छाता छूट कर उड़ने लगता है]

पहला व्यक्ति

वाह चचा, बेपर की उड़ाने में आप बड़े कुशल हैं!

[मारुति छाता के पीछे दौड़ता है...सब लोग हँसते हैं]

काट

नवां दृश्य

काट

स्थान : एक शिविर का भीतरी भाग]   [चरित्र : धनराज और रंजना

[धनराज के हाथ में वीणा है—रंजना शिविर द्वार से आकाश की ओर देखते हुए मल्हार गा रही है]

रंजना का गाना

उमड़ घुमड़ बरसो !
सघन घन उमड़ घुमड़ बरसो !
प्यासी धरती प्यासा अम्बर !
आज प्रणय का प्यासा अन्तर !
स्नेह सुधा बन प्राण प्राण में !
रस बन भूपर सरसो !
उमड़ घुमड़ घन बरसो !

[रंजना के गाने के ऊपर उपगुप्त का गायन सुन पड़ता है]

उपगुप्त का गान

बरसो तुम करुणा बन मानव—प्रखर विश्व की प्यास अरे
स्नेह सुधा से जीवित कर दो जग का मृत विश्वास अरे,
शीतल श्वासों के समीर से थके हुए का श्रम हर लो
झुलसा देने वाला पावक है यह हास विलास अरे !
प्रेम अश्रुओं की वर्षा कर तुम जग का भव ताप हरो !
यह अग—जग पीड़ित अति दुख से दया करो तुम दया करो !

रंजना

अरे—यह तो भइया का स्वर है...वे यहां कहां ?

[धनराज अपनी वीणा रख देता है और रंजना के साथ उठ खड़ा होता है]

धनराज

स्वर तो उपगुप्त का ही है—देखूं !

[दोनों शिविर के द्वार की ओर बढ़ते हैं ।]

काट

दसवां दृश्य

काट

स्थान : आठवें दृश्य वाला] [चरित्र : उपगुप्त और मारुति

[उपगुप्त गाता हुआ आ रहा है ! मारुति ने अपना छाता पकड़ लिया है ज़ोर से खुले हुए छाते को पकड़े हुए वह उपगुप्त की ओर दौड़ता है । उपगुप्त के पास पहुंच कर वह उसके चरणों पर साष्टांग दंडवत् करता है]

उपगुप्त

आयुष्मान हो ! उठो मारुति चाचा !

मारुति

भगवन्, धनराज और रंजना भी यहीं हैं ! बड़े सुयोग से आप पधारे हैं ! चलिए !

[मारुति अपना छाता उपगुप्त पर लगाता है और स्वयं भीगता हुआ उपगुप्त के पीछे-पीछे चलता है !]

काट

ग्यारहवां दृश्य

काट

स्थान : नवें दृश्य वाला] [चरित्र : रंजना और धनराज

रंजना

अरे देखा मारुति चाचा ने क्या धजा बना रखी है !

धनराज

[हँसता है]

जैसे देवता वैसा पुजारी !

[दोनों द्वार के बाहर बरसते पानी में निकलते हैं]

काट

बारहवां दृश्य

काट

स्थान : आठवें दृश्यवाला] [चरित्र : मारुति और उपगुप्त

[उपगुप्त और मारुति चल रहे हैं ! मारुति का छाता उलट गया है...और उपगुप्त भीग रहा है ! लेकिन मारुति का ध्यान उस ओर नहीं है]

मारुति

भगवन् , इतनी लम्बी यात्रा पैदल ?

उपगुप्त

क्यों ? पैदल चलने को ही तो पैर बने हैं !

मारुति

हां भगवन्, लेकिन सवारी करने के लिए ये हाथी, घोड़े, ऊंट, बैल और गधे भी तो बने हैं !

[मारुति की बात पर उपगुप्त मुसका देता है। मारुति स्वयं अपनी बात से प्रसन्न होकर प्रफुल्लित हो जाता है !]

मारुति

भगवन्, एक तथ्य की बात हम कहते हैं ! आप एक ऊंट मोल ले लीजिए...असली मरु प्रदेश का ऊंट हमारे पास है...सस्ते में दे देंगे। बोझा का बोझा लादिए और सवारी की सवारी कीजिए !

[धनराज और रंजना भीगते हुए आते हैं। धनराज उपगुप्त के गले मिलता है !]

धनराज

स्वागत है उपगुप्त !

[रंजना उपगुप्त के चरण छूती है]

रंजना

श्री चरणों में रंजना का प्रणाम !

उपगुप्त

आयुष्मती हो बहिन ! तुम्हारा सौभाग्य फूले फले !

परिवर्तन

तेरहवाँ दृश्य

परिवर्तन

स्थान : वही जो नवें दृश्य का था] [चरित्र : उपगुप्त, धनराज रंजना और मारुति

[रंजना उपगुप्त के चरण धोती हैं। धनराज उपगुप्त के पार्श्व में बैठा है। मारुति खड़ा है। रंजना पैर धोकर उठती है !]

रंजना

भइया के लिए बहिन रंजना अपने हाथों से भोजन तैयार करेगी। क्यों भइया !

उपगुप्त

बहिन का स्नेह भार मैं कैसे संभाल सकूंगा ! जैसी इच्छा ?

[मारुति मुस्कराता हुआ धनराज के सामने आता है]

मारुति

और भतीजे धनराज के लिए चचा मारुति अपनी पिस्ते बदाम की खीर पकाते हैं !

धनराज

साधुवाद चचा मारुति ! लेकिन उपगुप्त के लिए ?

मारुति

भगवान् तो समवेत्ता हैं ! उनके लिए जैसी पिस्ते बादाम की खीर वैसी ही मूंग की खिचड़ी। चलो बहू जल्दी करें ! इतनी लम्बी यात्रा के बाद भगवान् की भूख भड़क उठी होगी !

[रंजना के साथ मारुति का प्रस्थान]

उपगुप्त

धनराज, तो इस वर्षा ऋतु में जब दूसरे लोग परदेस से अपने अपने घर वापिस लौटते हैं, तब तुम परदेस की यात्रा कर रहे हो !

धनराज

मथुरा जा रहा हूँ उपगुप्त ! क्षेमेन्द्र को धन की आवश्यकता है । बाहर जो तुमने ऊंट देखे हैं वे सब के सब स्वर्ण मुद्राओं से लदे हैं !

उपगुप्त

धन तो तुम मारुति के साथ भिजवा सकते थे, स्वयं तुम्हारे जाने का तो कुछ विशेष कारण होना चाहिए !

धनराज

कारण जानना चाहते हो उपगुप्त, लेकिन तुम मुझे उपदेश न देने लगना । मैं एक बार मथुरा नगर की सुप्रसिद्ध नर्तकी वासवदत्ता को देखना चाहता हूँ !

उपगुप्त

धनराज ! मेरी एक बात मानो ! तुम यहीं से लौट जाओ !

धनराज

क्या कहा...लौट जाऊं ?

उपगुप्त

हां, लौट जाओ ! मैंने वासवदत्ता को देखा है ! मैं कहता हूँ आग से मत खेलो !

धनराज

उपगुप्त, तुम तो पहेली बुझा रहे हो !

उपगुप्त

हां धनराज, नर्तकी वासवदत्ता वासना की वह गूढ़ पहेली है जिसे न आज तक कोई सुलझा सका और न आगे कोई सुलझा सकेगा ! वासवदत्ता के पास रूप है, रूप का मद है । उसकी सुन्दरता विद्युत् की भांति नेत्रों में भयानक चकाचौंध उत्पन्न कर देती है, पर उस सुन्दरता के पास जाने का साहस करने वाला मनुष्य भस्म हो जाएगा । इसी से कहता हूँ...लौट जाओ !

[धनराज ज़ोर से हँस पड़ता है]

धनराज

स्त्री के सम्बन्ध में तुम सदा से कायर रहे हो उपगुप्त, नहीं तो तुम भिक्षु क्यों बनते !

उपगुप्त

तुम्हें सुबुद्धि प्राप्त हो धनराज !

क्रम लोप

चौदहवां दृश्य

क्रम दर्शन

स्थान : वासवदत्ता का भवन, एक कमरा] [चरित्र : सोमदत्त और सुलेखा

[सुलेखा पुष्प का एक आभूषण बना रही है । बगल के कमरे से सोमदत्त आता है]

सोमदत्त

अरी सुलेखा!

सुलेखा

हां मामा!

सोमदत्त

फिर मुझे मामा कहा...पगली कहीं की!

सुलेखा

क्या करूं? घर भर तो तुम्हें मामा कहता है। तो मेरे मुख से भी निकल जाता है!

सोमदत्त

अरी घर भर के अन्य लोगों में और तुम में तो बड़ा अन्तर है। तुम जानती हो मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूँ। तुम कह दो तो मैं कुएँ में कूद पड़ूं, आग में फांद पड़ूं, आसमान पर उड़ जाऊं!

सुलेखा

सच?

सोमदत्त

और नहीं क्या झूठ? सुलेखा...सोमदत्त प्रेमी है, रसज्ञ है, कलाकार है! अगर मैं अपना हृदय चीर कर दिखला सकता तो तुझे विश्वास हो जाता!

सुलेखा

हृदय फिर कभी चीर कर दिखाना मामा...इस समय तो मैं स्वामिनी को यह पुष्पाभूषण देने जाती हूँ!

काट

पन्द्रहवां दृश्य

काट

स्थान : वासवदत्ता का शृंगार गृह] [चरित्र : वासवदत्ता, अलका, सुलेखा, दो अन्य सखियां, सोमदत्त

[वासवदत्ता के केश एक दासी सम्हाल रही है...एक दासी उसको आभूषण पहाना रहीं है। अलका उसके मुख पर लेप आदि कर रही है]

अलका

स्वामिनी के अधरों पर उल्लास की छटा न होकर, नयनों में चिन्ता का धुंधलापन है। क्या कारण है...हम लोग इसमें कुछ सहायता कर सकती हैं ?

[अलका जब अपनी बात कहती है, सुलेखा फूलों के आभूषण लिये हुए आती है]

वासवदत्ता

अलका, जानती है ! कभी कभी हास विलास, सुख वैभव...यह सब हृदय पर एक बोझा सा लगता है। प्राणों में एक प्रकार की कसक सी भर जाती है, मन भारी हो जाता है !

सुलेखा

अपराध क्षमा हो स्वामिनी—यह अवस्था तो प्रेम की सी मालूम होती है !

अलका

तू प्रेम क्या जाने सुलेखा...मुझ से सुन ! प्रेम में सर आसमान में होता है, पैर हवा में पड़ते हैं। आंखों में चमक, होठों पर हंसी, मन में उमंग, प्राणों में पुलकन। उहूं स्वामिनी, आप प्रेम वेम के चक्कर में पड़ने वाली नहीं। प्रेम में स्त्री अपनी नहीं रहती, वह दूसरे की हो जाती है ! वह मिट जाती है, वह उजड़ जाती है !

वासवदत्ता

[हँसती है]

तब तो प्रेम बुरी बला है अलका !

अलका

नहीं स्वामिनी ! प्रेम जीवन का सबसे बड़ा वरदान है ! जिसने प्रेम के मतवाले पन को नहीं जाना उसने जीवन को नहीं जाना। उसने एक बहुते बड़े स्वर्गीय आनन्द को खो दिया।

[सोमदत्त का शीघ्रता से प्रवेश]

सोमदत्त

बेटी...समय हो गया ! दर्शकों की भीड़ उतावली हो रही है ! महाराज राजभवन से नृत्य भवन के लिए चल चुके हैं !

वासवदत्ता

वासवदत्ता अपना समय लेगी मामा...आप चिन्ता न करें !

काट

सोलहवां दृश्य

काट

स्थान : महाराज क्षेमेन्द्र का नृत्य भवन] [चरित्र : क्षेमेन्द्र, धनराज, मंत्री गण, वासवदत्ता, रंजना, भीड़...

[क्षेमेन्द्र अपने आसन पर विराजमान हैं। भवन में एक बड़ी भीड़ एकत्रित है ! सामने झूला पर कृष्ण की मूर्ति है ! क्षेमेन्द्र झुंझलाया हुआ सा अपने चारों ओर देखता है फिर अपने भृत्य से पूछता है !]

क्षेमेन्द्र

भृत्य, वासवदत्ता के आने में इतना विलम्ब क्यों ?

भृत्य

महाराज ही कुछ समय के पहले आ गए हैं !

[क्षेमेन्द्र मुसकराता है । इसी समय प्रधान मंत्री के साथ धनराज आता है]

प्रधान मंत्री

काशी के नगर सेठ धनराज आए हैं !

[क्षेमेन्द्र खड़ा होकर धनराज का आलिंगन करता है]

क्षेमेन्द्र

आओ भाई धनराज...बहुत समय बाद मिलना हुआ । कितने दिनों से हम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे थे । बड़े अच्छे अवसर पर आए हो !

[धनराज क्षेमेन्द्र के समकक्ष आसन पर बैठता है]

धनराज

आज कोई विशेष उत्सव है क्या ?

क्षेमेन्द्र

मथुरा का सबसे बड़ा उत्सव धनराज ! आज मेरी प्रेयसी, संसार की सुविख्यात नर्तकी वासवदत्ता भगवान् कृष्ण का झूला नृत्य करेगी। वर्ष में केवल एक बार मथुरा नगर के नागरिकों के सामने वह नृत्य करती है, और वह भी केवल भगवान् के लिए !

[एकाएक चारों ओर निस्तब्धता छा जाती है। नर्तकियों के एक झुंड के साथ वासवदत्ता सभा मंडप में प्रवेश करती है ! प्रथम वह भगवान् का अभिवादन करती है फिर महाराज क्षेमेन्द्र का अभिवादन करती है !]

क्षेमेन्द्र

देखा तुमने वासवदत्ता को ! अब उसका नृत्य प्रारम्भ हो रहा है!

[नृत्य : प्रारम्भ होता है ! यह समवेत नृत्य है। समस्त सभा मंत्रमुग्ध सी इस नृत्य को देखती है ।]

नृत्य संगीत

आज ब्रज रास रचो आली !
श्याम झुलावें राधा झूलें रस में मतवाली !
कदम डाल पर पड़ा हिंडोला रिम झिम बरसे मेह
सुध बुध भूली, तन मन खोई, छोड़ चली निज गेह !
श्याम के रंग में रंगी राधिका झूलें मन औ प्राण
दिशि दिशि गूंज रही है मादक वह मुरली की तान !

[संगीत और नृत्य समाप्त होता है ! धनराज आवेश में कह उठता है]

धनराज

कितना मनोहर !

[परिवर्तन

सत्रहवां दृश्य

परिवर्तन

स्थान : क्षेमेन्द्र की बैठक] [चरित्र : वासवदत्ता, क्षेमेन्द्र और धनराज

[विसुध और मुग्ध धनराज वासवदत्ता की ओर देख कर कहता है]

धनराज

कितना मनोहर ! जीवन में प्रथम बार इतना मनोमुग्धकारी नृत्य देखा है !

क्षेमेन्द्र

और सौन्दर्य ?

धनराज

दुनिया में नर्तकी वासवदत्ता की समता करने वाली सुन्दरी स्त्री मैंने नहीं देखी !

[वासवदत्ता मुसकरा कर इस प्रशंसा का स्वागत करती है ! वह धनराज के मदिरा पात्र में मदिरा ढालती है]

वासवदत्ता

धन्यवाद नगरसेठ धनराज ! कदाचित् आपने काफ़ी दुनिया देखी है !

धनराज

आज तक तो मैं यही समझे था, लेकिन यह मेरी भूल थी ! मैं समझती हूँ मुझे अभी बहुत कुछ देखना बाकी है !

वासवदत्ता

नगरसेठ, जितना देखा है, और आगे जो कुछ अपने आप ही दिख जाय उस पर सन्तोष करना। कौतूहल को दबाने में ही कल्याण है ! कौतूहल वश आगे बढ़ कर चीज़ों को जानने के प्रयत्न में कभी कभी मिट जाना पड़ता हैं !

धनराज

नर्तकी, मिटने के लिए ही जीवन बना है, फिर मिटने से भय कैसा ?

[क्षेमेन्द्र जो अभी तक वासवदत्ता और धनराज की बातचीत बड़े ध्यान से सुन रहा है और जो साथ साथ मदिरापान करता जा रहा है, धनराज की बात पर प्रसन्नता प्रकट करता है !]

क्षेमेन्द्र

क्या बात कही तुमने धनराज ! मेरा सारा राजपाट इस बात पर न्यौछावर है ! मैं स्वयं इस बात पर न्यौछावर हो जाता यदि मैं वासवदत्ता पर न्यौछावर न हो गया होता !

[हँसता है और वासवदत्ता का हाथ पकड़ता है]

क्या बात कही धनराज ! मिटने ही के लिए जीवन बना है। मिट गया हूँ धनराज ! देखते हो कितनी सुन्दर है यह...दीप शिखा की तरह !

[धनराज मुसकराता है]

धनराज

क्षेमेन्द्र, एक और व्यक्ति ने वासवदत्ता की उपमा विद्युत् से दी थी। उसने कहा था कि वासवदत्ता को छूने वाला भस्म हो जाएगा !

क्षेमेन्द्र

वासवदत्ता को छूने वाला भस्म हो जाएगा ! कौन है वह मूर्ख जिसने क्षेमेन्द्र की प्रेयसी के सम्बन्ध में यह बात कही !

धनराज

मूर्ख नहीं...परम ज्ञानी भिक्षु उपगुप्त !

[उपगुप्त का नाम सुनते ही वासवदत्ता चौंक उठती है ! उसके मुख की स्मिति लोप हो जाती है]

वासवदत्ता

उपगुप्त !

[क्षेमेन्द्र ज़ोर से हँसता है, शराबी की निरर्थक हँसी !]

क्षेमेन्द्र

भिक्षु उपगुप्त ! मेरा गुरु भाई उपगुप्त ! तुम्हारा गुरु भाई उपगुप्त ! नेक उपगुप्त...बस वही यह बात कह सकता था...उसे यह कहने का अधिकार है !

[क्षेमेन्द्र गम्भीर हो जाता है]

धनराज, मुझे उपगुप्त पर बड़ा क्रोध है। मथुरा आया था... मैं यहां नहीं था, मेरे वास्ते ठहरा तक नहीं। बहुत बड़ा महात्मा बन गया है सुना है। क्य हाल हैं उसके ?

धनराज

हाल क्या बताऊं क्षेमेन्द्र। कहीं स्थिर रहना मानों उनका विधान ही नहीं है। मैंने काशी में अपना गंगातट वाला भवन उनको दे दिया है रहने के लिए।

क्षेमेन्द्र

अच्छा, वह तो पूरा राज भवन है।

धनराज

लेकिन वह भिक्षु हो गये हैं, विहार में रहते हैं। कभी कभी घूमते घामते जब काशी आते हैं तो वहीं ठहरते हैं।

क्षेमेन्द्र

भिक्षु हो गया उपगुप्त। भगवान् ने उसके भाग्य में यही लिखा था। छोड़ो भी, जो भाग्य में है वही मिलता है। पियो' मस्त रहो। वासवदत्ता...मेरे भाई धनराज की प्यास शान्त करो। इन्हें मदिरा दो।
[वासवदत्ता धनराज के प्याले में मदिरा ढालती है, धनराज वासवदत्ता की आंखों में देखता है...मूक और विसुध सा।]

धनराज

मेरी प्यास शान्त कर सकोगी नर्तकी ?

वासवदत्ता

नगरसेठ, जो शान्त हो जाती है वह प्यास नही है। प्यास के अर्थ हैं पीना...पीना...पीना।
[वासवदत्ता और धनराज एक दूसरे को देख रहे हैं...मदिरा प्याले से छलक कर बह रही है।]

परिवर्तन

अठारहवां दृश्य

परिवर्तन

स्थान : मथुरा की एक सड़क वासवदत्ता का भवन] [चरित्र : धनराज

[धनराज विक्षिप्तावस्था में चल रहा है। वह वासवदत्ता के भवन के सामने पहुँच कर दरवाज़ा खटखटाता है।]

कट

उन्नीसवां दृश्य

स्थान : वही जो चौदहवें दृश्य में है] [चरित्र : वासवदत्ता, धनराज, दो सैनिक

[दो सशस्त्र सैनिक कमरे में बैठे ऊंघ रहे हैं। दरवाज़े का खटखटाना सुन कर वे चौंक कर आंखें खोलते हैं द्वार पर फिर आवाज़ होती है]

एक सैनिक

किस अभागे की मृत्यु खींच लाई है उसे ?

दूसरा सैनिक

मैं तो इन प्राण देने वाले पागलों से परेशान हूँ।

[दोनों उठते हैं और दरवाज़े की ओर बढ़ते हैं। उसी समय वासवदत्ता का स्वर सुनाई देता है और दोनों रुक जाते हैं]

वासवदत्ता

ठहरो। तुम लोग भीतर जाओ जब मैं बुलाऊं तब आना।

दोनों सैनिक भीतर जाते हैं]   [वासवदत्ता स्वयं द्वार खोलती है

वासवदत्ता

अन्दर आओ अतिथि।

[धनराज अन्दर आता है। वासवदत्ता को अपने आगे खड़ा देख कर उसे आश्चर्य होता है]

धनराज

नर्तकी वासवदत्ता। तुम स्वयं द्वार खोलने आई हो।

वासवदत्ता

हां नगर सेठ धनराज ! मैं जानती थी कि तुम आओगे।

धनराज

तो तुम मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं।

वासवदत्ता

नहीं नगरसेठ। मैं केवल इस लिए जाग रही थी कि तुम मेरे द्वार-पालों के हाथ में पड़कर कल बधिक के हाथों न सौंप दिये जाओ।

धनराज

बधिक के हाथों ?

वासवदत्ता

नगर सेठ ! पतंगों की भांति पुरुष मेरी सुन्दरता की लौ में जलने और मरने आया करते हैं। इन द्वारपालों को देखा है न। इनका काम है उन पागलों को पकड़ कर बधिक के हाथों सौंप देना। मैं जानती थी कि तुम भी आओगे। और तुम बधिक के हाथो न सौंपे जाओ इस लिए मैं जाग रही थी। अब जाओ यहां से नगरसेठ।

[धनराज हँसता है]

धनराज

नर्तकी वासवदत्ता। नगरसेठ धनराज का पग पीछे हटाने के लिए नहीं उठाया जाता। मैं आज रात तुम्हारी रूप...मदिरा का पान करने आया हूँ।

वासवदत्ता

यह सम्भव नहीं नगरसेठ।

धनराज

संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है। वासवदत्ता! तुम जानती नहीं धनराज को। आर्यावर्त के जितने राजे महाराजे हैं वे सब धनराज के ऋणी हैं। धनराज बड़े बड़े साम्राज्यों को बना सकता है, मिटा सकता है। वह धनराज अपनी समस्त शक्ति और समस्त सम्पत्ति तुम्हारे चरणों पर रक्खे देता है। जो चाहे ले लो, लेकिन धनराज प्यासा नहीं लौटेगा।

वासवदत्ता

जो कुछ मैं मांगूगी, दे सकोगे धनराज? मुंह तो नहीं मोड़ोगे?

धनराज

धनराज अपनी बात का धनी है, दुनिया यह बात जानती है।

वासवदत्ता

तो मैं काशी में तुम्हारा गंगातट वाला भवन मांगती हूँ।

धनराज

जिसमें उपगुप्त रहते हैं? नहीं वासवदत्ता, उस भवन के स्थान पर उससे दसगुनी, बीस गुनी, सौ गुनी मूल्य की कोई दूसरी वस्तु मांग लो।

वासवदत्ता

मुझे केवल वही भवन चाहिए। स्वीकार है ?

धनराज

[कुछ देर मौन रहने के बाद]

स्वीकार है नर्तकी !

वासवदत्ता

तो आओ।

काट

बीसवाँ दृश्य

काट

स्थानः एक कमरा] [चरित्रः रंजना और मारुति

[रंजना एक खिड़की के पास खड़ी बाहर देख रही है। बाहर निविड़ अन्धकार है। मारुति कुछ दूर पर चिन्तित और हत-प्रभ सा खड़ा है]

मारुति

वेद में कहा है कि शास्त्र की बात ग़लत नहीं होती।

रंजना

लेकिन वह हैं कहां ?

मारुति

वही तो कह रहा हूँ। तो शास्त्र कहते हैं कि मदिरापान करना बुरा है। और हम पी गए मदिरा।

रंजना

राम राम । चाचा । आप भी मदिरा पीने लगे ।

मारुति

अरे हमने नहीं पी, वह तो हमें मंत्री जी ने जबरदस्ती पिला दी । तो फिर हम और धनराज साथ साथ चले पैदल । सुहानी रात—चांदनी छिटकी हुई । तो हम चले—वह आगे आगे और हम पीछे पीछे । अब जो चले तो रास्ते में कभी वह आगे तो कभी हम पीछे और कभी हम पीछे तो कभी वह आगे । तो इस आगे पीछे में वह लोप होगए ।

रंजना

आधीरात होगई चाचा । भगवान् जाने वह कहां गए । उन्हें ढुंढवाइये ।

मारुति

उन्हें ढुंढवाएं किससे—हमीं ढूंढने जाते हैं । लेकिन हमें डर है कि कहीं हम स्वयं ही न खो जायें ।

रंजना

आप मत जाइये । राज्य के सिपाही भिजवाइये ।

मारुति

अरे राम राम । ऐसा गजब चाचा मारुति नहीं कर सकते । बड़ी बदनामी हो जाएगी ।

रंजना

चाचा. न जाने क्यों मेरा जी घबराता है । मेरी दाहिनी आंख फड़क रही है । यह अपशकुन क्यों ?

मारुति

वायु का विकार है बहू—हम चरन देते हैं। घबराने की बात नहीं, घूम फिर कर वह सुबह के पहले तक वापस आ जाएंगे। तुम सोओ, मुझे भी नींद लगी है।

[मारुति लड़खड़ाता हुआ जाता है—रंजना खिड़की पर खड़ी रहती है]

काट

इक्कीसवां दृश्य

काट

स्थानः—एक कमरा] [चरित्रः धनराज और मारुति

[मारुति चल रहा है और स्वतः अपने से कह रहा है]

मारुति

आश्चर्य की बात तो यह कि जिसे धनराज समझा वह कोई दूसरा निकला। शकल बदल गई—भगवान् जाने क्या होगया। अब प्रश्न यह है कि है कहां?

[सामने से धनराज का प्रवेश]

लीजिए—आ पहुँचे। ---लेकिन---लेकिन—यह धनराज ही तो है—क्यों जी?

धनराज

हां चाचा मैं ही हूँ। सोइये जाकर।

मारुति

सोऊं क्या खाक! मुसीबत कर रक्खी है बहू ने। कितना कहा कि लौट आओगे---बच्चे नहीं हो, बेवकूफ नहीं हो। लेकिन अभी तक जाग रही है।

धनराज

अच्छा सुन लिया। अब शयन की बेला हो गई।

[धनराज जाता है, मारुति हँसता है]

मारुति

अगर सुबह का भूला शाम को घर लौट आवे तो भूला नहीं कहलाता है।

काट

बाईसवां दृश्य

काट

स्थानः—बीसवें दृश्यवाला] [चरित्रः—धनराज और रंजना

[रंजना खिड़की पर खड़ी है। धनराज की पगध्वनि सुनती है—घूम कर देखती है। धनराज को देखते ही वह द्वार की ओर दौड़ती है]

रंजना

प्रियतम—कितनी देर हो गई।

धनराज

तुम अभी तक नहीं सोईं ?

रंजना

नहीं प्रियतम ! न जाने क्यों जी घबराता था ! इतनी देर कहां कर दी ?

धनराज

एक मित्र से मिलने चला गया था—चलो सोओ चल कर !

तेईसवां दृश्य

काट

स्थानः चौदहवें दृश्यवाला] [चरित्रः—वासवदत्ता, सोमदत्त, अन्य लड़कियां

[वासवदत्ता के हाथ में दानपत्र है। सोमदत्त, सुलेखा और अलका वहां हैं]

वासवदत्ता

काशी की यात्रा करनी है ! एक घड़ी का समय है, सब लोग अपना आवश्यक सामान लेकर तैयार हो जाओ।

सोमदत्त

यह अनायास ही यात्रा की क्या सूझी ? जल्दी का काम शैतान का !—कुछ सोच समझ लो बेटी !

वासवदत्ता

सोच समझ लिया है मामा ! यमुना नदी वाला मेरा बजरा तैयार करवाओ जाकर।

सोमदत्त

महाराज क्षेमेन्द्र से तो पूछ लिया है बेटी ?

वासवदत्ता

मैं महाराज क्षेमेन्द्र की दासी नहीं हूँ—जाओ मामा, विलम्ब मत करो ! समय बहुत कम है।

वासवदत्ता

अलका, बहुत बड़ी साधना करनी है मुझे, अपने देवता को पाने के लिए।

[वासवदत्ता के मुख पर एक मधुर मुस्कराहट है, उसकी आंखों में एक प्रकार की तन्मयता है। वह ऊपर देखती है—इसी समय सुलेखा कुछ दासों के साथ सामान लेकर बाहर आती है।]

सुलेखा

मैं तैयार हूँ स्वामिनी !

वासवदत्ता

अच्छा, तनिक रुको, मैं अभी आती हूँ।

[वासवदत्ता का अपने कमरे में प्रवेश]

काट

चौबीसवां दृश्य

काट

स्थानः—वासवदत्ता का पूजागृह] [चरित्रः—वासवदत्ता

[वासवदत्ता शीघ्रता के साथ अपने पूजा-गृह में आती है। वहां शक्ति की मूर्ति स्थापित है। वासवदत्ता अपने हाथ वाला दानपत्र एक ताक पर रख कर शक्ति की मूर्ति के सामने नत होती है]

वासवदत्ता

माता, आशीर्वाद दो कि मेरी साधना सफल हो।

[दूर से श्वान के भूकने का स्वर। एक बिल्ली दौड़ती हुई आती है—दीपक भू पर गिर जाता है और वहाँ अन्धकार हो जाता है। वासवदत्ता इन अपशकुनों की उपेक्षा करके उठती है]

वासवदत्ता

मैं सफल हूँगी—मुझसे कोई भी मेरी साधना को नहीं छीन सकता।

वासवदत्ता तेज़ी के साथ कमरे के बाहर निकलती है। दानपत्र वह वहीं भूल जाती है।

काट

पचीसवां दृश्य

काट

स्थान—यमुना-तट-नौकाएं खड़ी हैं [चरित्र—सोमदत्त, दासियां नाविक आदि :

नौकाओं पर चहल पहल है। मांझी कुछ कुपित से हैं इस अनायास यात्रा पर। :

एक मांझी

कुछ समय तो दिया होता हम लोगों को। एकाएक इस यात्रा का आयोजन!

सोमदत्त

यही तो हम भी कहते हैं। लेकिन आज्ञा है—उसे टाल कौन सकता है। आज्ञा है!

[वासवदत्ता अलका और सुलेखा के साथ आती है।]

वासवदत्ता

हां मेरी आज्ञा है। नौकाएं खोल दो—पूर्व की ओर जाना है हमें।

[नावें खुलती हैं—एक गहरा अन्धकार—डाँडों की छपाछप सुनाई पड़ती है]

[क्रमालोप]

छब्बीसवां दृश्य

क्रम-दर्शन

स्थान : अठारहवें दृश्य वाला] [चरित्र—क्षेमेन्द्र और धनराजः

[क्षेमेन्द्र और धनराज उद्यान मार्ग पर चल रहे हैं]

क्षेमेन्द्र

तुम नहीं जानते धनराज, वह मुझसे कितना प्रेम करती है। प्रात काल जब तक मैं उसके यहां नहीं जाता वह जल नहीं ग्रहण करती। वासवदत्ता का पवित्र और मादक प्रेम पाकर मैं धन्य हूँ !

धनराज

हां क्षेमेन्द्र ! वासवदत्ता ऐसी सुन्दरी के पीछे इन्द्र भी अपनी अप्सराओं को छोड़ सकता है, मनुष्य की गिनती ही क्या है।

क्षेमेन्द्र

और मेरी प्रजा कहती है कि मैं अकर्मण्य हूँ, आलसी हूँ, राज काज में मन नहीं लगाता। धनराज, सच बताओ इतनी सुन्दरी प्रेयसी का प्रेम पाकर भला किसका राज काज में मन लग सकता है ?

धनराज

ठीक कहते हो क्षेमेन्द्र, पर राज काज में मन तो लगाना ही होगा।

[दोनों वासवदत्ता के भवन में पहुंचते हैं और द्वारा खटखटाते हैं। द्वार खुलता है और दोनों प्रवेश करते हैं]

काट

सत्ताईसवां दृश्य

काट

स्थान—चौदहवें दृश्य वाला] [चरित्र—क्षेमेन्द्र, धनराज और दो प्रहरी :

[दोनों प्रहरी साष्टाग लेटे हैं। क्षेमेन्द्र और धनराज के सामने आकर करुण स्वर में बोलते हैं]

एक प्रहरी

सर्वनाश हो गया महाराज !

दूसरा प्रहरी

लेकिन हमारा कोई अपराध नहीं !

क्षेमेन्द्र

क्या हुआ ? बोलो वासवदत्ता कहां है ?

प्रथम प्रहरी

सब लोग रात के समय कहीं चले गए। हम दोनों को स्वामिनी ने भीतर के उद्यान के उस ओर भेज दिया था—और यह आज्ञा दे दी थी कि सुबह तक हम दोनों इधर न आवें। प्रातः जब हम लोग इधर आये तो देखा कि भवन खाली पड़ा है।

क्षेमेन्द्र

वासवदत्ता चली गई—विश्वास नहीं होता ! वासवदत्ता ! वासवदत्ता !

[क्षेमेन्द्र वासवदत्ता के कक्ष में जाता है]

काट

अट्ठाईसवां दृश्य

काट

स्थान—पन्द्रहवें दृश्य वाला]   [चरित्र—धनराज और क्षेमेन्द्र

[क्षेमेन्द्र पागल की भांति "वासवदत्ता" पुकारता हुआ कमरे में घूमता है। कमरे से मिले पूजा-गृह में वह जाता है—इसके बाद वह खिड़की से यमुना नदी की ओर देखता है। धनराज की दृष्टि ताक पर रक्खे हुए दानपत्र पर पड़ती है। वह दानपत्र को उठा कर अपने वस्त्रों में छिपा लेता है। धनराज के मुख पर मुस्कराहट है]

परिवर्तन

उन्तीसवां दृश्य

परिवर्तन

स्थान—बीसवें दृश्यवाला]   [चरित्र—धनराज और मारुति

[धनराज अपने वस्त्र से दानपत्र निकाल कर देखता है—उसके मुख पर वही मुस्कराहट है! मारुति आता है]

मारुति

बड़े प्रसन्न दिख रहे हो वत्स!

धनराज

मारुति चाचा! हम लोगों को एक घड़ी के अन्दर ही यहां से चल देना है। प्रबन्ध करो!

मारुति

अरे तुम तो एक पक्ष रुकने के लिए यहां आए थे। और यहाँ यह कि कल आए आज चले!

धनराज

मुझे काशी में कुछ आवश्यक काम है, और फिर मथुरा में अधिक समय तक रहना निरापद नहीं है।

मारुति

जैसी इच्छा वत्स !

काट

तीसवां दृश्य

काट

स्थान:सत्रहवें दृश्य वाला] [चरित्र:क्षेमेन्द्र, दोनों प्रहरी, राज-कर्मचारी गण

[क्षेमेन्द्र क्रोध में कमरे में टहल रहा है। वह स्वयं अपने से बात कर रहा है]

क्षेमेन्द्र

चली गई—बिना मुझसे कहे, बिना मुझसे पूछे ! मन्त्री !

मन्त्री

महाराज !

क्षेमेन्द्र

कुछ पता चला ?

मन्त्री

महाराज, अभी पता चला है कि एक बहुत बड़ा बजरा यमुना नदी में पूर्व की ओर द्रुत-गति से जा रहा है। उस बजरे में अधिकांश स्त्रियां हैं।

क्षेमेन्द्र

अश्वारोही सैनिकों को भेज कर वह बजरा रुकवा दो। वासवदत्ता को वन्दिनी बना कर यहां ले आओ!

मन्त्री

जैसी आज्ञा महाराज, पर मुझे भय है कि हमारे सैनिकों के पहुँचते-पहुँचते वह बजरा हमारे राज्य की सीमा से बाहर हो जाएगा। और क्या इन दो प्रहरियों को प्राण-दण्ड देना अनिवार्य है?

क्षेमेन्द्र

इन दोनों को प्राण-दण्ड? इनका अपराध क्या था? क्या ये लोग वासवदत्ता की आज्ञा को ठुकरा सकते थे? नहीं, मन्त्री—इन्हें छोड़ दो। और—और—वासवदत्ता का पीछा करने की कोई आवश्यकता नहीं।

[क्षेमेन्द्र अब अपने आसन पर बैठ जाता है]

क्षेमेन्द्र

परिचायिका!

[परिचायिका क्षेमेन्द्र के सामने हाथ जोड़ कर उपस्थित होती है]

क्षेमेन्द्र

मदिरा का पात्र!

[परिचायिका क्षेमेन्द्र के सामने मदिरा का पात्र रख कर उसे भर देती है]

क्षेमेन्द्र

मन्त्री, वासवदत्ता मुझे छोड़ कर नहीं जा सकती ! मेरे प्रेम में इतनी शक्ति है कि वह वापस लौटेगी।

[क्षेमेन्द्र मदिरा का पात्र अपने होठों से लगाता है]

क्रमा लोप

इकत्तीसवाँ दृश्य

क्रम - दर्शन

स्थानःगंगा नदी-काशी] [चरित्रःवासवदत्ता, सोमदत्त, अलका और सुलेखा :

[गंगा पर एक बजरा चल रहा है। हंस की भांति सजी नौका पर वासवदत्ता खड़ी हुई गंगा तट को देख रही है। वासवदत्ता के पास ही सोमदत्त, अलका और सुलेखा खड़े हैं]

वासवदत्ता

कितना शान्त वातावरण है माता गंगा का। और दूर पर वह पवित्र काशी नगरी है—एक ध्यान-मग्न तपस्विनी की भांति। यहां की वायु में भक्ति-रस का प्रवाह है।

[वासवदत्ता के इस कथन की भाति काशी के घाटों के दृश्य जहां लोग स्नान कर रहे हैं और पूजन कर रहे हैं। इसके बाद हम फिर बजरे को देखते हैं]

वासवदत्ता

ध्यान, पूजा, साधना की नगरी काशी ! तुम्हें मेरे शत शत प्रणाम स्वीकार हो।

सोमदत्त

लेकिन बेटी, मुझे इस नगरी को देख कर डर लगने लगा है !

वासवदत्ता

क्यों ?

सोमदत्त

इसलिए कि कहीं मैं यहां वैराग्य न ले लूं !

सुलेखा

तो इसमें बुराई क्या है ? अवस्था भी तो काफ़ी हो गई है !

सोमदत्त

देखा बेटी, देखा इस सुलेखा को ! इतना समझाता हूँ कि यह जो बाल श्वेत हो गए हैं इसका कारण यह है नज़ला उतर आया है ! वैद्य जी से पूछ लो न ! लेकिन जब देखो तब यह मुझे बूढ़ा बताती है ।

वासवदत्ता

सुलेखा, तू क्यों बेकार मामा को सताया करती है ?

सुलेखा

मैं कहां इन्हें सताती हूँ स्वामिनी, यही जब देखो तब मुझे सताते रहते हैं ! इतना कहती हूँ कि सींग कटा कर बछड़ों में मत शामिल हो, लेकिन मानते ही नहीं ।

सोमदत्त

देखा, अब मुझे बैल बना रही है...और वह भी बूढ़ा बैल ! अच्छी बात है तट पर चलने दो तब समझ लूंगा !

सुलेखा

समझ से तो तुम्हारी जन्मजात शत्रुता रही है !

वासवदत्ता

मामा, हम लोग काशी पहुँच गए हैं ! नौका धनराज के भवन की ओर ले चलने को कहो !

काट

बत्तीसवां दृश्य

कटा

स्थान : गंगा के तट पर एक उद्यान और एक कुटी] [चरित्र : उपगुप्त

[उपगुप्त अपनी कुटी से निकल कर गंगा तट की ओर चलता है। तटपर एक नौका बँधी है। उस नौका पर कई भिक्षुक हैं। उपगुप्त को देखते ही सब भिक्षु सतर्क हो जाते हैं।]

भिक्षु

प्रणाम भगवन् !

उपगुप्त

आयुष्मान् हो भिक्षुओ

[उपगुप्त नौका पर आसन ग्रहण करता है]

उपगुप्त

पूर्व दिशा की ओर चलना है...पाटलिपुत्र होकर विहार की यात्रा है।

[भिक्षु नौका की रस्सी खोलते हैं और पाल चढ़ाते हैं। एक भिक्षु पश्चिम की ओर देख कर कहता है]

एक भिक्षु

भगवन् ! कितना सुसज्जित बजरा पश्चिम से इस ओर आ रहा है। ऐसा लगता है कि कोई राजा या रानी तीर्थाटन के लिए निकले हैं !

उपगुप्त

जो धन वैभव नहीं छोड़ सकता उसकी तीर्थयात्रा नहीं सफल होती। वे शरीर को तो तीर्थ में लाते हैं पर उनका मन भोग-विलास का दास बना रहता है !

[उपगुप्त का वाक्य समाप्त होते ही नौका चल पड़ती है।]

काट

तैंतीसवां दृश्य

काट

स्थान : गंगा तट का दूसरा भाग] [चरित्र : वासवदत्ता एवं साथी

[बजरा गंगातट पर रुकता है। वासवदत्ता और उसके साथी नौका से उतरते हैं]

: परिवर्तन :

चौंतीसवां दृश्य

परिवर्तन

स्थान:एक बड़े भवन का बाहरी भाग] [चरित्र:वासवदत्ता उसके साथी, लुब्धक और धनराज

लुब्धक

आप लोगों का परिचय ?

सोमदत्त

हम हैं सुविख्यात श्री सोमदत्त महोदय, मथुरा नगर के निवासी... गायक, विदूषक ! और यह हैं मथुरा नगर की सुप्रसिद्ध नर्तकी वासवदत्ता ...मेरी भांजी !

लुब्धक

इस स्थान पर आने का आप लोगों ने कैसे कष्ठ उठाया ?

वासवदत्ता

तुम यह प्रश्न करने वाले कौन होते हो ?
क्या यह भवन नगर सेठ धनराज का नहीं है ?

लुब्धक

देवि, यह भवन नगर सेठ धनराज का ही है और मैं नगर सेठ का भृत्य लुब्धक हूँ। यह भवन मेरी देख-रेख में है !

वासवदत्ता

अब यह भवन मेरा है क्योंकि नगरसेठ धनराज ने यह भवन मुझे दे दिया है और मैं यहां इस भवन में रहने आई हूँ !

लुब्धक

लेकिन इसका प्रमाण क्या है कि नगरसेठ ने यह भवन आपको दे दिया है ?

वासवदत्ता

प्रमाण ?...अरे...वह दानपत्र ?

[इसी समय एक हाथ दानपत्र लिए आगे बढ़ता है और एक स्वर सुनाई पड़ता है]

स्वर

यह दानपत्र है नर्तकी वासवदत्ता

[सब लोग नगरसेठ धनराज की ओर देखते हैं जो अब अश्व से उतर रहा है]

वासवदत्ता

नगर सेठ धनराज !

लुब्धक

प्रणाम नगरसेठ !

धनराज

आज से इस भवन की स्वामिनी देवि वासवदत्ता है लुब्धक। भवन को खुलवा कर देवि वासवदत्ता का सामान रखवाओ !

[वासवदत्ता मुसकराती है और कृतज्ञता के भाव में बहती है]

वासवदत्ता

नगरसेठ धन्यवाद ! तुमने मेरे ऊपर इस समय बड़ा उपकार किया नहीं तो मुझे बड़ा कष्ट उठाना पड़ता।

धनराज

नर्तकी वासवदत्ता का छोटे से छोटा कष्ट धनराज के प्राणों की बड़ी से बड़ी पीड़ा होगी !

[कुछ रुक कर]

यह मेरा सौभाग्य था कि यह दानपत्र जो तुमने भूल से मथुरा में छोड़ दिया था, क्षेमेन्द्र के हाथ में न पड़ कर मेरे हाथ पड़ गया, नहीं तो उनके क्रोध का प्रहार मुझ पर हो सकता था !

वासवदत्ता

मैं क्षमाप्रार्थी हूँ नगरसेठ । क्या महाराज क्षेमेन्द्र बहुत क्रोधित हुए थे ?

धनराज

क्रोधित की अपेक्षा निराश और दुखी अधिक ! अपनी निधि का खो जाना किसे अच्छा लगता है ?

वासवदत्ता

तुमने कैसे समझा कि क्षेमेन्द्र ने अपनी निधि खो दी ?

धनराज

लोगों की भावना मैं पढ़ सकता हूँ वासवदत्ता ! मैं जानता हूँ कि वासवदत्ता ने कभी क्षेमेन्द्र से प्रेम नहीं किया, क्षेमेन्द्र के यहां वह बन्धन में थी ! उस बन्धन को तोड़ कर वह काशी नगरी में प्रेम पाने आई है !

वासवदत्ता

[हँसती है]

नगरसेठ ! तुम ज्ञानी हो, मैं मान गई ! वासवदत्ता काशी में प्रेम पाने के लिए ही आई है ! क्या उसे प्रेम मिल सकेगा ?

[धनराज के मुख पर एक प्रकार का गर्वभरा उल्लास आता है यह समझ कर कि वासवदत्ता उसके प्रेम की ओर संकेत कर रही है]

धनराज

अवश्य मिलेगा ! वासवदत्ता के लिए किसी भी चीज़ को पाना असम्भव नहीं है !

[वासवदत्ता एक दीर्घ निःश्वास भरती है। वह पश्चिम की ओर देखती है...सूर्यास्त हो रहा है, और फिर पूर्व की ओर घिरते अन्धकार की ओर देखती है। पूर्व में उसे एक कुटी दिखलाई देती है]

वासवदत्ता

सूर्यास्त हो रहा है नगरसेठ, देख रहे हो पूर्व दिशा पर अन्धकार उमड़ रहा है। वह कुटी कैसी ?

धनराज

वह उपगुप्त की कुटी है। वे भवन में नहीं रहते !

वासवदत्ता

[एक कृत्रिम मुस्कराहट के साथ]

उपगुप्त की कुटी ! [कुछ रुक कर] इतनी लम्बी यात्रा से थक गए होंगे नगरसेठ ! मैं भी बहुत थक गई हूँ ! विश्राम करो जाकर ! फिर मिलेंगे !

धनराज

हां वासवदत्ता, मैं सीधा तुम्हारे पास ही आया हूँ मैं कल आऊंगा !

[धनराज जाता है। वासवदत्ता कुछ देर तक खड़ी रहती है, फिर वह कुटी की ओर बढ़ती है। सब कुछ शान्त है। कुटी के द्वार

पर जंज़ीर चढ़ी है। वह खिड़की खोलती है और कुटी के अन्दर प्रवेश करती है।]

काट

पैंतीसवां दृश्य

काट

स्थान:कुटीर का भीतरी भाग] [चरित्र:वासवदत्ता

[वासवदत्ता कुटी के अन्दर पहुँचती है। वह कुटी की खिड़कियां खोल देती है। बहुत थोड़ा सा सामान है उस कुटी में.. कुछ पुस्तकें; एक तख़्त और दीवार पर कुछ चित्र। सब चीज़ों को वह ध्यान से देखती है। उसकी दृष्टि उपगुप्त के एक चित्र पर पड़ती है। अन्धकार बढ़ता जाता है। वह खिड़कियां बन्द करती है, फिर वह उपगुप्त का चित्र वहां से उतार लेती है।]

क्रमालोप

छत्तीसवां दृश्य

क्रमदर्शन

स्थान:वासवदत्ता का कमरा] [चरित्र:वासवदत्ता

[वासवदत्ता के कमरे में उपगुप्त का चित्र लगा है। चित्र के सामने एक दीपक जल रहा है और चित्र पर फूल मालाएं चढ़ी हैं। वासवदत्ता के शरीर पर गेरुवे रंग की साड़ी है, उसके शरीर पर कोई अलंकार नहीं है। भूमि पर उसकी शैया है। एक तपस्विनी की भांति वह दिखती है]

काट

सैंतीसवां दृश्य

काट

स्थानः उस भवन का एक बड़ा कमरा] [चरित्रः सोमदत्त और सुलेखा

[सोमदत्त सुलेखा का हाथ पकड़े है, सुलेखा उस पर आपत्ति करती है]

सुलेखा

देखो, देखो, इस भवन की पवित्रता को मत नष्ट करो ! यह पूजा और साधना का स्थान है !

सोमदत्त

अरे तो मैं तुझसे यही कह रहा हूँ कि मेरी पूजा कर ! वासवदत्ता और तुझमें अन्तर केवल इतना है कि वासवदत्ता का देवता यहां नहीं है जब कि तेरा देवता यहां स्थापित है !

सुलेखा

कौन है उनका देवता...जानते हो ?

सोमदत्त

सोमदत्त से कौन सी बात छिपी रह सकती है ?

सुलेखा

सच ! अच्छा बताओ तो !

सोमदत्त

लेकिन किसी से कहना नहीं !

सुलेखा

मुझे इतना अबोध क्यों समझ रक्खा है !

सोमदत्त

उपगुप्त नाम का एक बौद्ध भिक्षु !

सुलेखा

तुमने कैसे जाना ?

सोमदत्त

वासवदत्ता के कमरे में एक चित्र है जो कपड़े से ढका रहता है। केवल पूजा करने के समय ही वासवदत्ता उस चित्र को खोलती है। वह चित्र उपगुप्त का है !

[सुलेखा मुस्कराती है]

सुलेखा

अब समझी ! कुछ दिन पहले मथुरा में वे आए थे ! कितने सुन्दर थे वे !

सोमदत्त

सच कहना सुलेखा...मुझ से भी सुन्दर !

[सुलेखा की आंखों में शरारत की एक चमक आती है]

सुलेखा

युवावस्था में बहुत सम्भव है तुम उनसे सुन्दर रहे हो, लेकिन इस बुढ़ापे में......

सोमदत्त

फिर मुझे वृद्ध कहा......दुष्टा कहीं की !

सुलेखा

देखो...कोई आ रहा है...देखो तो !

[सोमदत्त द्वार की ओर बढ़ता है...धनराज का प्रवेश । धनराज के साथ छः आदमी अपने सिर पर सामान लादे हुए आते हैं]

धनराज

नमस्कार महाशय सोमदत्त जी !

सोमदत्त

प्रसन्न रहो नगर सेठ धनराज ! स्वागत है !

धनराज

देवि वासवदत्ता के लिए यह उपहार लाया हूँ ।

सोमदत्त

यह सामान आप यहीं रखवाइये...मैं वासवदत्ता को सूचना देता हूँ ।

[सोमदत्त जाता है । भृत्य सामान उतारते हैं]

अड़तीसवाँ दृश्य

काट

स्थान : छत्तीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : वासवदत्ता और सोमदत्त

[वासवदत्ता उपगुप्त के चित्र के सामने ध्यानावस्थित बैठी है। बाहर से सोमदत्त की आवाज़ आती है]

सोमदत्त

बेटी।

[वासवदत्ता चित्र पर कपड़ा ढांक कर उठ खड़ी होती है]

वासवदत्ता

आइये मामा...क्या बात है ?

[सोमदत्त का मुसकराते हुए प्रवेश]

सोमदत्त

बेटी, नगर सेठ धनराज आए हैं।

वासवदत्ता

नगरसेठ धनराज। उन्हें यहीं भेज दो।

काट

उन्तालीसवां दृश्य

काट

स्थान : सैंतीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : सुलेखा, धनराज, सोमदत्त

सुलेखा

स्वामिनी तो त्याग और वैराग्य का जीवन व्यतीत कर रही हैं... उनके लिए यह उपहार व्यर्थ है।

धनराज

त्याग और वैराग्य...यह क्यों ?

सुलेखा

यह तो वही जानें...उनसे पूछ लीजिएगा।

[सोमदत्त का प्रवेश]

सोमदत्त

देवि वासवदत्ता ने आपको अपने भवन में बुलाया है। आइये।

[सोमदत्त और धनराज का प्रस्थान]

काट

चालीसवां दृश्य

स्थान : छत्तीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : धनराज और वासवदत्ता

[वासवदत्ता द्वार पर खड़ी प्रतीक्षा कर रही है...धनराज का प्रवेश]

वासवदत्ता

भूमि पर बैठने में कष्ट तो न होगा नगरसेठ ? मैंने अपनी शैया भूमि पर बना ली है !

[धनराज चकित सा चारों ओर देखता है, फिर एक आसन पर बैठ जाता है, वासवदत्ता धनराज के आश्चय पर मुस्कराती है]

वासवदत्ता

आश्चर्य हो रहा है नगरसेठ धनराज को, यह देख कर कि भोग विलास की सम्राज्ञी वासवदत्ता आज त्याग और विराग की दासी कैसे बन गई ?

धनराज

नर्तकी वासवदत्ता का अनुमान ठीक है। और आश्चर्य इसलिए और बढ़ गया है कि वासवदत्ता मुझसे यह स्वीकार कर चुकी है कि वह प्रेम पाने के लिए काशी आई है।

वासवदत्ता

वासवदत्ता ने झूठ नहीं कहा था। लेकिन वासवदत्ता मनुष्य का नहीं, देवता का प्रेम पाने के लिए काशी आई है।

[वासवदत्ता की बात सुन कर धनराज मुस्कराता है]

धनराज

अब समझा। तो वासवदत्ता काशी में भगवत् भजन करने पधारी हैं। [धनराज अब गंभीर हो जाता है] लेकिन नर्तकी, तुम्हारे नयनों में शान्ति की दीप्ति नहीं है, अभिलाषा की चमक है। तुम्हारे मुख पर त्याग की गम्भीरता नहीं है, अनुराग का उल्लास है।

वासवदत्ता

प्रत्येक पूजा और साधना के पीछे अभिलाषा और अनुराग है।

धनराज

हो सकता है। लेकिन वासवदत्ता...इन वस्त्रों में तुम्हारा सौन्दर्य और भी निखर उठा है। इस सौन्दर्य को तुम तपस्या और साधना से नष्ट कर दोगी। इस भ्रम युक्त मार्ग को छोड़ो।

वासवदत्ता

तुम नहीं जानते धनराज। यही मेरे लिए सबसे उचित मार्ग है।

धनराज

सुन्दरता की देवी के लिए कौन सा मार्ग उचित है और कौन अनुचित, इसका निर्णय सुन्दरता के पुजारी पर होना चाहिए। क्या मैं आशा कर सकता हूँ कि तुम यह मार्ग छोड़ दोगी?

वासवदत्ता

[उठती हुई]

मैंने अपना पग उठा लिया है धनराज। जब तक मैं असफलता से टकराती नहीं तब तक आगे बढ़ती जाऊंगी।

धनराज

[उठने के लिए विवश होता है। उसके मुख पर निराशा मिश्रित झुँझलाहट है]

जैसी इच्छा। तो अब मुझे चलना होगा। वासवदत्ता तुम्हारा असफलता से टकराना अनिवार्य है।

वासवदत्ता

धनराज, क्रोधित मत होना, आत्मीयता का भाव बनाए रखना!

[धनराज बिना उत्तर दिए हुए कमरे के बाहर चला जाता है। वासवदत्ता चित्र के सम्मुख बैठती है और चित्र के ऊपर वाला कपड़ा हटा देती है]

काट

इकतालीसवां दृश्य

काट

स्थान : सैंतीसवां दृश्य] [चरित्र : सुलेखा, सोमदत्त और धनराज

[सोमदत्त एक पीताम्बर पहने धनराज द्वारा लाए हुए सामान के सामने खड़ा है। उसके हाथ में एक सुन्दर साड़ी है। सुलेखा सोमदत्त के पार्श्व में खड़ी है। सोमदत्त साड़ी का अंचल सुलेखा के सिर पर रक्खे हुए गाता है]

सोमदत्त

तुम राधे, हम श्याम।

[धनराज तेज़ी के साथ कमरे में आता है]

सोमदत्त

आइये नगर सेठ धनराज। हमारी राधा को आपने देखा।

धनराज

हां महाशय सोमदत्त। अब मैं चलूंगा।

सोमदत्त

अरे रे रे। पारा क्यों चढ़ा हुआ है?...यह सब सामान? स्वामिनी तो लेंगी नहीं।

धनराज

जो कुछ तुम लोगों को लेना हो आपस में बांट लो, जो बचे वह बेंच दो, जो न बिके उसे फेंक दो।

[धनराज बिना सोमदत्त की ओर देखे चला जाता है]

: क्रमालोप

बयालीसवां दृश्य

क्रम दर्शन

स्थान : गंगा का तट : इक्तीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : उपगुप्त और भीड़

[दूर से उपगुप्त का गान सुन पड़ता है। तट पर भीड़ खड़ी है...उपगुप्त का स्वागत करने के लिए]

उपगुप्त का गान

जो तप जो साधना प्राप्ति के अर्थ, व्यर्थ उसको जानो।
अरे अहम् के सबल उपासक, तुम निज भ्रम को पहचानो।
त्याग और वैराग्य नहीं यदि प्रेरित जग की करुणा से
भ्रष्ट तुम्हारा सकल इष्ट है...तुम इतना निश्चय जानो।
तुम समर्थ दाता हो, निर्बल के बल बन कर तुम बिखरो।
यह अग जग पीड़ित अति दुख से दया करो, तुम दया करो।

[नौका तट पर आकर लगती है। उपगुप्त नौका से उतरता है। भीड़ आगे बढ़ती है।]

लोग

प्रणाम भगवन्।

उपगुप्त

आयुष्मान् हो।

लोग

भगवन्, हमें ज्ञान दीजिये।

उपगुप्त

दया करो, पीड़ित मानवता की सेवा करो। निजी भेद भाव दूर करो। सब जीवों को अपने समान समझो।

[उपगुप्त अपनी कुटी की ओर बढ़ता है]

काट

तैंतालीसवां दृश्य

काट

स्थान : छत्तीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : वासवदत्ता

[वासवदत्ता उपगुप्त के चित्र का परदा हटाए हुए उस पर माला चढ़ाती है। इसके बाद वह आरती का थाल उठा कर उपगुप्त के चित्र की आरती करती है। आरती के साथ वासवदत्ता गाती और नाचती है]

वासवदत्ता का गाना

मेरे देवता आराध्य।
प्रेम तुम साकार उन्मद
परम छविमय, परम सुन्दर,
प्राण की अविकल तृषा में
तृप्ति की छलना मनोहर,
मुक्ति की तुम साधना हो

भुक्ति की मैं साध्य ।
मेरे देवता आराध्य ।
तुम नयन की ज्योति जागृत
श्वास के तुम कम्प अक्षय
भावना के रूप तुम हो
भक्ति के तुम इष्ट तन्मय,
तुम पुरुष गतियुक्त चेतन
मैं प्रकृति हूँ बाध्य ।
मेरे देवता आराध्य ।

काट

चवालीसवां दृश्य

काट

स्थान : बत्तीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : उपगुप्त

[दूर से वासवदत्ता का संगीत उपगुप्त को सुनाई देता है। उपगुप्त चलता है]

परिवर्तन

पैंतालीसवां दृश्य

परिवर्तन

स्थान : छत्तीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : उपगुप्त

[उपगुप्त बड़े कमरे में चलता है। वह वासवदत्ता के कमरे का द्वार खोल कर अन्दर देखता है]

काट

छियालीसवां दृश्य

काट

स्थान : छत्तीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : वासवदत्ता

[वासवदत्ता उपगुप्त के चित्र की आरती कर रही है। नृत्य और संगीत !]

काट

सैंतालीसवां दृश्य

काट

स्थान : सैंतीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : उपगुप्त और सोमदत्त

[एक दीर्घ निश्वास लेकर तथा नतमस्तक होकर उपगुप्त कमरे में आता है और धीरे धीरे बाहर जाता है। जिस समय उपगुप्त कमरे से जा रहा है, सोमदत्त दूसरे द्वार से बाहर आता है। वह उपगुप्त को देखता है और ठिठक जाता है। जैसे ही उपगुप्त बाहर जाता है, सोमदत्त शीघ्रता के साथ वासवदत्ता के कमरे की ओर बढ़ता है]

काट

अड़तालीसवां दृश्य

काट

स्थान : सैंतीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : उपगुप्त

[उपगुप्त कमरे के बाहर निकल कर कुछ उदास खड़ा रहता है फिर एक दीर्घ निश्वास लेकर थका सा द्वार की अन्तिम सीढ़ी पर बैठ जाता है]

काट

उन्चासवां दृश्य

काट

स्थान : छत्तीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : वासवदत्ता, सोमदत्त

[सोमदत्त घबराया सा कमरे में आता है]

सोमदत्त

बेटी, अभी अभी यहां भिक्षु उपगुप्त आए थे।

[वासवदत्ता के हाथ से आरती की थाली छूट पड़ती है]

वासवदत्ता

उपगुप्त ? कहां हैं वे मामा ?

[वासवदत्ता तेज़ी से कमरे के बाहर जाती है।]

काट

पचासवां दृश्य

काट

स्थान : चौंतीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : उपगुप्त, वासवदत्ता

[वासवदत्ता अपने भवन से बाहर निकलती है। वह उपगुप्त को देख कर कहती है]

वासवदत्ता

भिक्षु उपगुप्त ! मैं कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी !

[उपगुप्त भूमि पर आंखें गड़ाए बैठा है, वह न वासवदत्ता की ओर देखता है न कोई उत्तर देता है। उसकी आंखों में आंसू हैं। वासवदत्ता उपगुप्त के सामने आकर खड़ी होती है]

वासवदत्ता

अरे! आंखों में यह आंसू कैसे?

उपगुप्त

नर्तकी, तुम्हारे पतन का कारण मैं बना, इसका मुझे दुःख है!

वासवदत्ता

क्या कह रहे हो भिक्षु! मेरी ओर देखो। तुम्हारे प्रेम में मथुरा नगर के राज वैभव का छोड़ कर मैं काशी में तपस्या कर रही हूँ! भोग विलास छोड़ कर साधना संयम का जीवन व्यतीत कर रही हूँ। इसे तुम पतन कहते हो!

उपगुप्त

नर्तकी, तुम मथुरा लौट जाओ। काशी आने में तुमने भूल की।

वासवदत्ता

नहीं भिक्षु! यहां मुझे तुम्हारा प्रेम खींच लाया है। मैं तुम्हें पाना चाहती हूँ। तुम्हें पाने के लिए मैं मृत्यु के मुख तक में कूद सकती हूँ।

[उपगुप्त के मुख पर एक करुण मुस्कान आती है]

उपगुप्त

नर्तकी! तुम कहती हो कि तुम मुझसे प्रेम करती हो और मुझे पाना चाहती हो। याद रखना नर्तकी, प्रेम दूसरे को पाने के लिए नहीं किया

जाता, प्रेम अपने को खोने के लिए किया जाता है। तुम स्वयं अपने को छल रही हो।

वासवदत्ता

मैं स्वयं अपने को छल रही हूँ ?

उपगुप्त

हां। रूप और यौवन के मद में भूली हुई, उतावले और अनुभव-हीन युवकों के हृदयों की रानी! तुम यह नहीं देख पाती हो कि तुम वासना और भोग विलास की दासी हो!

वासवदत्ता

इसी से तो तुम्हारे पास आई हूँ भिक्षु उपगुप्त! मुझे अपने चरणों में स्थान दो, मुझे अपना ज्ञान दो, मुझे अपनी बना लो।

उपगुप्त

तुम किसी की नहीं बन सकतीं नर्तकी...तुम दूसरों को अपना बनाना चाहती हो। अच्छा, अब मुझे यहां से चलना होगा।

[उपगुप्त उठ खड़ा होता है और चलने को तत्पर होता है]

वासवदत्ता

कहां जा रहे हो भिक्षु ?

उपगुप्त

काशी के बाहर। सोचा था कुछ विश्राम करूं, लेकिन दिखता है कि विश्राम का विधान नहीं है।

[वासवदत्ता उपगुप्त के चरण पकड़ कर रोकती है]

वासवदत्ता

मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगी भिक्षु उपगुप्त ! तुम रुको, इस भवन में तुम मेरे आराध्य बन कर विश्राम करो। मैं तुम्हारी सेवा करूंगी, उपासना करूंगी। तुम मुझे अपनी शरण में लो !

[उपगुप्त वासवदत्ता को उठाता है: एक सरल मुस्कराहट उसके मुख पर आती है]

उपगुप्त

नर्तकी, मैं तुमसे कह रहा हूँ कि तुम अपने को धोखा दे रही हो। आज तुम्हें मेरी आवश्यकता नहीं है। जिस दिन तुम्हें मेरी आवश्यकता होगी, मैं तुम्हें वचन देता हूँ मैं बिना बुलाए आऊंगा !

[उपगुप्त चला जाता है। वासवदत्ता के मुख पर निराशा के भाव आते हैं फिर निराशा प्रतिहिंसा में बदल जाती है। वह तन कर खड़ी हो जाती है]

वासवदत्ता

अपने ऊपर इतना अभिमान ! मेरा इतना अधिक तिरस्कार। मैं अपने को धोखा दे रही हूँ ! हां, मैं अभी तक अपने को धोखा दे रही थी...इस अहंकारी भिक्षु के आगे झुक कर। मैंने अपने को कितना गिरा दिया है !

[वासवदत्ता उन्माद के आवेश में भीतर जाती है]

काट

बावनवां दृश्य

काट

स्थान : सैंतीसवा दृश्य वाला] [चरित्र : वासवदत्ता

[वासवदत्ता बाहर से आती है। वह अपने से ही कह रही है]

वासवदत्ता

वासवदत्ता हार नहीं सकती, किसी दशा में नहीं हार सकती। वासवदत्ता में सौन्दर्य है, शक्ति है!

[वासवदत्ता अपने कमरे में प्रवेश करती है]

काट

तिरपनवां दृश्य

स्थान : छत्तीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : वासवदत्ता

[वासवदत्ता अपने कमरे में आती है। उपगुप्त का चित्र सामने है...वासवदत्ता उस चित्र के सामने जाती है]

वासवदत्ता

वासवदत्ता अपनी गुरुता को भूल क्यों गयी थी? तुम कहते हो कि मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं। हां, मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं है, बिल्कुल नहीं है। सुन्दरता का तिरस्कार करने वाले अभागे भिक्षु!

[वासवदत्ता चित्र को फाड़ कर टुकड़े टुकड़े करती है]

वासवदत्ता

मैं तुमसे घृणा करती हूँ...घृणा करती हूँ।

[वासवदत्ता यह कहते कहते मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है]

परिवर्तन

चौवनवां दृश्य

परिर्तवन

स्थान : छत्तसवें दृश्य वाला] [चरित्र : वासवदत्ता

[वासवदत्ता की मूर्छा टूटती है ! वह उठती है...अपने चारों ओर वाले वातावरण को देखती है, फिर दर्पण के सामने खड़ी होती है। दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखती है।]

वासवदत्ता

तुम कौन हो, गेरुआ पट पहने हुए, तपस्विनी सी दिखने वाली ?

प्रतिबिम्ब

मैं हूँ वासवदत्ता, भिक्षु उपगुप्त की पुजारिन !

वासवदत्ता

झूठ ! तुम वासवदत्ता नहीं हो। वासवदत्ता किसी की पूजा नहीं करती। दूसरे लोग वासवदत्ता की पूजा करते हैं !

प्रतिबिम्ब

नर्तकी वासवदत्ता ! प्रेम के अर्थ हैं पूजा करना, आराधना करना !

वासवदत्ता

[हंसती है]

पूजा आराधना ! यह सब निर्बल और असमर्थ के गुण हैं...सबल और समर्थ के नहीं !

प्रतिबिम्ब

यही तो विडम्बना थी नर्तकी वासवदत्ता ! तुम उपगुप्त को पाने आई थीं, उसे अपना दास बना कर उसे अपने संकेतों पर नचाने के लिए। लेकिन वासवदत्ता, तुम नर्तकी हो, उपगुप्त नहीं। तुम दूसरों के इशारों पर नाचने वाली हो, उपगुप्त नहीं।

[वासवदता एकाएक उद्विग्न हो जाती है]

वासवदत्ता

चुप रहो। मैं नाचने वाली नहीं हूं, मैं दूसरों को अपने इशारों पर नचाने वाली हूँ। देखना आज से कि मैं क्या हूँ !

[वासवदत्ता तेज़ी से घूम कर बाहर जाती है]

काट

पचपनवां दृश्य

काट

स्थान : सैंतीसवें दृश्यवाला] [चरित्र : वासवदत्ता, अलका, सुलेखा और सोमदत्त

[वासवदत्ता अपने कमरे से निकल कर पुकारती है]

वासवदत्ता

अलका !........सुलेखा ।

अलका का स्वर

स्वामिनी !

[दूसरे द्वार से अलका और सुलेखा का प्रवेश]

अलका

आज्ञा !

वासवदत्ता

मामा कहां हैं सुलेखा ? जा उन्हें बुला ला ।

सुलेखा

अभी लेकर आई ।

[सुलेखा जाती है, वासवदत्ता कुछ रुक कर]

वासवदत्ता

अलका ! मेरे सुन्दर से सुन्दर वस्त्र निकाल । मेरा शृंगार कर चल के ।

अलका

स्वामिनी...सच । कितने हर्ष की बात है । अभी लो ।

[अलका जाती है । सुलेखा का सोमदत्त के साथ प्रवेश]

सोमदत्ता

मुझे याद किया था बेटी !

वासवदत्ता

मामा, इस भवन को पूरी तरह सजवाओ। सुलेखा, भोजन शाला में कह दो कि आज एक बहुत बड़ा भोज होगा।

सोमदत्त

अरे...भवन सजवाओ, भोजन बनवाओ, क्या बात है ?

वासवदत्ता

कोई बात नहीं मामा। अच्छी से अच्छी मदिरा मंगवाओ, वासवदत्ता आज उत्सव मनाएगी।

सोमदत्त

अहोभाग्य हम लोगों के बेटी। दौड़ सुलेखा, सब प्रबन्ध कर जा के। बेटी, कौन कौन लोग उस भोज में आयेंगे ?

वासवदत्ता

मैं नगरसेठ धनराज को एक पत्र देती हूँ। उससे कह देना कि नगर के सब मुख्य नागरिकों को वे अपने साथ लेकर आयें।

परिवर्तन

छप्पनवां दृश्य

परिवर्तन

स्थान : धनराज के भवन की बैठक] [चरित्र : धनराज, उसके मित्र, सोमदत्त

[सोमदत्त द्वार से जबर्दस्ती घुस रहा है। उसके पीछे उसे धनराज के दो भृत्य पकड़े हुए हैं जो सोमदत्त से बल में पार न पाकर घिसटते चले आते हैं]

सोमदत्त

हम भी धनराज के मित्र हैं। तुम हमें जानते नहीं। नगरसेठ।

धनराज

अरे महाशय सोमदत्त ! आइये।

सोमदत्त

आपके भृत्य बड़े बेहूदे हैं महाशय नगरसेठ।

एक युवक

कोई बात नहीं महाशय...आपकी शक्ल देख कर लोगों को बेहूदापन सूझने ही लगता है।

धनराज

परिचायिका...महाशय सोमदत्त को भी मदिरा का पात्र दो। कहिए कैसे कष्ट किया ?

सोमदत्त

अहा हा हा। कैसी स्वादिष्ट मदिरा है। जुग जुग जियो। तो वासवदत्ता ने आपको पत्र दिया है।

[सोमदत्त उठकर धनराज को पत्र देता है। धनराज पत्र पढ़ता है]

धनराज

[पत्र पढ़ता है]

"अपने मित्रों को साथ लेकर मेरे भवन की शोभा बढ़ाइये। भोजन की व्यवस्था भी यहीं है। निराश न कीजिएगा, मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगी।"

धनराज

बहुत अच्छा महाशय सोमदत्त। देवि वासवदत्ता से कह देना कि उनका आदेश टालने का सामर्थ्य नगरसेठ धनराज में नहीं है।

सोमदत्त

धन्यवाद। धन्यवाद।

[मुसकुराता हुआ जाता है]

धनराज

मित्रो...नर्तकी वासवदत्ता ने मेरे साथ आप सब लोगों को भी आमन्त्रित किया है। भोजन की व्यवस्था भी वहीं है। मेरे आग्रह पर आप सब लोगों को चलना होगा।

मुक्तक

उहूँ। उस गेरुआ वस्त्र पहनने वाली नीरस स्त्री के यहां कौन जाय? क्यों धनराज, तुम आज अपने वचन को टालने लगे!

कुबेर

तुम महामूर्ख हो मुक्तक। हमारे परम सौभाग्य कि आज हम लोगों को देवि वासवदत्ता से मिलना होगा।

मुक्तक

लेकिन कुबेर। हम लोगों के वस्त्राभूषण...वह क्या कहेगी। वहां तो हम लोगों को राम नामी ओढ़ कर चलना चाहिए।

एक युवक

बात ठीक कही। वहां तो पंडितों और पुरोहितों की आवश्यकता है।

धनराज

चलो भी। अगर ऐसे ही झिझक होती है तो वेश भषा बदल लो। चंदन टीका मैं मंगवाए देता हूँ।

क्रमालोप

सत्तावनवां दृश्य

क्रम दर्शन

स्थान : सैंतीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : धनराज और उसके मित्र, सोमदत्त

[सोमदत्त कमरे में खड़ा है। धनराज और उसके मित्रगण प्रवेश करते हैं...सोमदत्त उन सब का स्वागत करता है। धनराज और उसके मित्र...सभी अजीब तरह के वस्त्र पहने हैं]

सोमदत्त

आइये पधारिए अतिथिगण। देवि वासवदत्ता की ओर से मैं आप महानुभावों का स्वागत करता हूँ। मैं अभी वासवदत्ता को आप लोगों के आगमन की सूचना देता हूं।

[सब लोग बैठते हैं, सोमदत्त वासवदत्ता को सूचना देने अन्दर जाता है]

काट

अट्ठावनवां दृश्य

काट

स्थान : छत्तीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : वासवदत्ता, अलका और सुलेखा

[अलका और सुलेखा वासवदत्ता का शृंगार कर रही हैं। शृंगार प्रायः समाप्त हो चुका है...वासवदत्ता दर्पण में अपने को देखती है और उसके मुख पर मुसकराहट आती है]

वासवदत्ता

हूँ...रूप और यौवन की रानी...चलो जहां भी चलना है तुम्हें।

[सोमदत्त का प्रवेश]

सोमदत्त

बेटी, नगरसेठ धनराज और उनके मित्र आ गए हैं।

वासवदत्ता

मैं अभी आई मामा। अलका, सुलेखा !

काट

उनसठवां दृश्य

काट

स्थान : सैंतीसवें दृश्य वाला] [चरित्र : धनराज, उसके मित्र, सोमदत्त, वासवदत्ता, सुलेखा, अलका, दासियां,

[धनराज के मित्र बैठे हैं और आपस में बातें कर रहे हैं]

कुबेर

सुगन्ध तो अच्छी आ रही है।

मुक्तक

न कहीं घंटा बज रहा है न शंख न घड़ियाल। क्यो धनराज...न पूजा पाठ, न हास विलास...बुरे फँसे। भगत जी, कुछ मदिरा वदिरा साथ में लाए हो?

भगत जी

राम राम! यहां वासवदत्ता के मंदिर में मदिरा का नाम ले रहे हो।

[वासवदत्ता कमरे में प्रवेश करती है। वासवदत्ता के प्रवेश के साथ अलका और सुलेखा हैं। इनके पीछे दो दासियां सुरा के प्यालों और सुराहियों के सहित प्रवेश करती हैं। सब अतिथि वासवदत्ता के प्रवेश के साथ ही अपने आसन से उठ खड़े होते हैं]

वासवदत्ता

स्वागत है अतिथिगण! [रुक कर सब लोगों को देखती है]
नगरसेठ धनराज! मैंने तुमसे अपने मित्रों को लाने को कहा था, यह तुम किन मूर्ख ढोंगियों को ले आए!

[धनराज बढ़ कर वासवदत्ता के निकट आता है]

धनराज

देवि वासवदत्ता! आज तुममें यह परिवर्तन कैसा?

[कुबेर वासवदत्ता की ओर बढ़ता है : बीच में वह अपना रूप बदल लेता है]

कुबेर

मैं न मूर्ख हूँ, न ढोंगी हूँ ! मैं नगरसेठ धनराज का परम मित्र श्रेष्ठी कुबेर हूँ।

[मुक्तक अब अपना रूप बदल कर आगे बढ़ता है]

मुक्तक

और मैं सामन्त मुक्तक हूँ !

विशाल

मैं काशी का कवि विशाल हूँ !

मृत्युंजय

मैं काशी का दंडनायक मृत्युंजय हूँ !

वासवदत्ता

लेकिन आप लोग अपना रूप बदल कर क्यों आए थे ?

कुबेर

हम लोग समझे थे कि हमें उपनिषदों का प्रवचन सुनने को बुलाया गया है !

[कुबेर अपने सब मित्रों के वस्त्र एकत्रित करता है। लेकिन भगत जी अपना परिधान नहीं देते हैं।]

भगत जी

यह मेरी निजी है, इसे मैं नहीं दूंगा।

[धनराज कुबेर और भगत जी की छीनाझपटी पर हंसता है]

धनराज

एक अकेले यह भगतजी हैं, लेकिन केवल ऊपर से। अन्दर से बहुत बड़े रसिक हैं।

कुबेर

लो यह अपनी रामनामियां।

धनराज

यह सब भगत जी के भाग्य की निकलीं। इनके साथ रख देना।
[वासवदत्ता के मुख पर इस काड से हल्की सी मुस्कराहट आती है]

वासवदत्ता

मैंने आप लोगों के सम्बन्ध में जो अनुचित बात कह दी थी उसके लिए क्षमा मांगती हूँ।...भगत जी। मेरे भवन में तो राम नामी नहीं चलेगी।

मुक्तक

तो फिर आप इन्हें अपना कोई परिधान दे दीजिए। यह यहां से चलने वाले नहीं।

[सब लोग अपना आसन ग्रहण करते हैं। धनराज वासवदत्ता के पार्श्व में बैठता है]

धनराज

बड़े हर्ष की बात है नर्तकी वासवदत्ता...तुमने उचित मार्ग अपना लिया है।

सब [एक स्वर में]

हम सब नर्तकी वासवदत्ता का अभिवादन करते हैं।

वासवदत्ता

धन्यवाद अतिथिगण। आज मैं उत्सव मना रही हूँ। सुन्दरता की रानी वासवदत्ता काशी के नागरिकों का स्वागत करती है।

[वासवदत्ता इन लोगों के सुरा पात्रों को भरती है]

धनराज

देवि वासवदत्ता, काशी के नागरिकों का कहना है कि बिना नर्तकी वासवदत्ता के नृत्य के यह उत्सव अधूरा है।

मुक्तक

अपने उत्सव में तो नर्तकी वासवदत्ता को नृत्य करना ही चाहिए।

[वासवदत्ता के सामने उसका प्रतिबिम्ब खड़ा हो जाता है। उस प्रतिबिम्ब के मुख पर एक व्यंगात्मक मुस्कुराहट है। प्रतिबिम्ब कहता है]

प्रतिबिम्ब

नर्तकी वासवदत्ता को तो नृत्य करना ही चाहिए। नर्तकी... नर्तकी! दूसरों के संकेतों पर नृत्य करने वाली नर्तकी! तुम उपगुप्त के समकक्ष आना चाहती हो? हा...हा...हा!

[प्रतिबिम्ब बड़ी ज़ोर से हंसता है। वासवदत्ता बड़े प्रयत्न के साथ इस दिवास्वप्न को दूर करती है! वह धनराज के मित्रों को देखती है, फिर धनराज को देखती है]

वासवदत्ता

नगरसेठ धनराज ! आज से वासवदत्ता नर्तकी नहीं रही ! वह दूसरों का मनोरंजन करने को नृत्य नहीं करेगी ! वह समर्थ है... वह स्वामिनी है !

[सब लोग आश्चर्य के साथ वासवदत्ता को देखते हैं। वासवदत्ता उठ खड़ी होती है]

वासवदत्ता

आप लोगों के आतिथ्य में उपेक्षा नहीं होगी ! परिचायिकाओ... भोजन और मदिरा लाओ !

परिवर्तन

साठवां दृश्य

परिवर्तन

स्थान : रंजना का भवन] [चरित्र : रंजना, परिचायिका, धनराज

[रंजना चिन्तित और उदास बैठी है। उसके सामने दासी खड़ी है]

रंजना

बिना उनके आए कैसे भोजन करूंगी ?

दासी

पर इतनी रात हो गई है... आप कब तक प्रतीक्षा करेंगी ?

रजना

कब तक प्रतीक्षा करूंगी... जब तक वे नहीं आते ! तू जा यहां से जब बुलाऊं तब आना !

[धनराज का प्रवेश : रंजना उठ कर धनराज का स्वागत करती है ।]

रंजना

कितनी देर हो गई प्रियतम ! मैं कितनी चिन्तित हो उठी थी ! [दासी से] जा हम दोनों का भोजन लगवा ।

धनराज

अभी तक तुमने भोजन नहीं किया...मैं भोजन करके आया हूँ ।

रंजना

कहाँ भोजन था ?...मुझे तो सूचना दिलवा दी होती...मैं प्रतीक्षा न करती ।

धनराज

नहीं दिलवा सका सूचना । लेकिन मेरे लिए प्रतीक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं ।

रंजना

यह क्या कह रहे हैं प्रियतम ! क्या मुझ से कुछ अपराध हो गया है ?

धनराज

तुम भोजन करो जाकर...मुझे सोने दो, नींद आ रही है । अजीब बेहोशी से भरी नींद ।

क्रमालोप

इकसठवां दृश्य

क्रम दर्शन

[वासवदत्ता और धनराज में घनिष्ठता स्थापित करने वाले चल दृश्य]

प्रथम

काशी नगरी के मार्ग पर वासवदत्ता और धनराज रथ पर बैठ कर निकलते हैं। नागरिक दोनों को देखते हैं।]

एक नागरिक

नगरसेठ धनराज नर्तकी वासवदत्ता के जाल में बुरी तरह फंस गए हैं। भगवान् ही रक्षा करें।

परिवर्तन

द्वितीय

[धनराज वासवदत्ता की बहुमूल्य वस्त्राभूषण उपहार में देता है]

परिवर्तन

तृतीय

[रात्रि के समय वासवदत्ता और धनराज अकेले में। धनराज बहुत पिये हुये हैं]

धनराज

घर जाने की इच्छा नहीं होती वासवदत्ता।

वासवदत्ता

यह भी तो तुम्हारा घर है धनराज।

परिवर्तन

चतुर्थ

[धनराज की गद्दी पर मारुति उदास बैठा है। दो तीन श्रेष्ठी वहां हैं।]

एक श्रेष्ठी

क्यों मारुति, नगरसेठ इधर कई दिनों से दिखाई नहीं देते। स्वास्थ्य तो ठीक है।

दूसरा श्रेष्ठी

क्यों मारुति, सुना है उन्हें प्रेम रोग लग गया है।

परिवर्तन

बासठवां दृश्य

स्थान : साठवें दृश्य वाला] [चरित्र... रंजना, धनराज

[रंजना एक करुण गान गा रही है]

रंजना का गाना

पिय बिन मेरा मंदिर सूना-सूना—पिय बिन बैरन रात री !
बैरी बना प्रेम, बैरिन बनी मेरे नैनन की बरसात री !
साज-सिंगार ये बिरथा भए, बिरथा यौवन का रंग-उमंग री
बिरथा है जीवन नाहीं मिले जहाँ मन चाहे को संग री !
हिय में उठी हूक—

: धनराज का प्रवेश

धनराज

रंजना...देवता कितना करुण संगीत था वह।

[रंजना खड़ी होती है...धनराज के पास जाती है]

रंजना

मेरे देवता...मेरे प्रियतम ! कितने दिनों बाद आप घर आए हैं। क्या आपने मुझे एकबारगी ही त्याग दिया है ?

धनराज

यह कैसी बात कह कह रही हो रंजना ?

रंजना

आप दो दो चार चार दिन नर्तकी वासवदत्ता के यहाँ क्यों पड़े रहते हैं ? बोलो मेरे प्रियतम, मौन क्यों हो ?

धनराज

रंजना...मुझे वहां अच्छा लगता है...मैं वासवदत्ता से प्रेम करता हूँ।

[धनराज की बात सुन कर रंजना हतचेतन सी हो जाती है]

रंजना

क्या सुन रही हूँ नाथ ! नर्तकी वासवदत्ता ने आपसे मेरे प्रेम को छीन लिया है...क्या सुन रही हूँ।

परिवर्तन

तिरसठवां दृश्य

परिवर्तन

स्थान : साठवें दृश्य वाला] [चरित्र : रंजना और मारुति

[रंजना बैठी है, मारुति दूर पर खड़ा है]

रंजना

चाचा, नर्तकी वासवदत्ता ने स्वामी से मेरे प्रेम को छीन लिया है।

मारुति

बहू, मैं पहले ही से यह समझ रहा था। लेकिन घबराओ नहीं, मैं कुछ ऐसा प्रबन्ध करूंगा कि वासवदत्ता काशी छोड़ कर मथुरा चली जाए।

रंजना

नहीं चाचा, वासवदत्ता के चले जाने से उन्हें दुःख होगा। ऐसा मत करना। अगर वे वासवदत्ता से प्रेम करते हैं तो करें, मैं वासवदत्ता का कोई अनिष्ट नहीं चाहती।

मारुति

यह क्या कह रही हो बहू ?

रंजना

चाचा, मैं उनसे प्रेम करती हूँ, वे मुझसे प्रेम करें या न करें। एक काम करोगे ?

मारुति

बोलो।

रंजना

वासवदत्ता को मैं यहाँ बुलाना चाहती हूँ। वह इस भवन में रहे आकर स्वामिनी की भांति। मैं स्वामी की सेवा के साथ उसकी भी सेवा करूंगी। इस प्रकार मेरे प्रियतम तो मुझ से दूर न होंगे।

मारुति

एक नर्तकी इस घर की स्वामिनी बन कर रहे और नगर सेठों की कुलवधू उसकी सेवा करे। तुम्हारा दिमाग़ तो नहीं ख़राब हो गया?

रंजना

यही एक उपाय है। जो मेरे भाग्य में है उसे भोगूगी और अपने देवता को प्रसन्न करूंगी। वासवदत्ता को आप मेरा निमंत्रण दे दीजिए, मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ।

मारुति

जैसी इच्छा बहू।

क्रमालोप

चौसठवां दृश्य

स्थान—सैंतीसवें दृश्यवाला :] [चरित्र-सोमदत्त, अलका, सुलेखा, अन्य सखियाँ, वासवदत्ता]

[सोमदत्त कठपुतली का तमाशा कर रहा है। सामने दर्शकों की, जिनमें सभी स्त्रियां हैं, भीड़ है। सब लोग बड़े कौतूहल के साथ तमाशा देख रहे हैं]

सोमदत्त

ये हैं चेमेन्द्र और ये हैं वासवदत्ता
मथुरा नगरी में इन दोनों की सत्ता।
एक दिन आ गए भिक्षु उपगुप्त
वासवदत्ता का हुआ सकल ज्ञान लुप्त।
भिक्षु उपगुप्त महा रूखा और नीरस
फिर भी वासवदत्ता उसके हो गई बस।
किन्तु प्रेम से तो लिया भिक्षु ने मुंह मोड़
और नर्तकी को भिक्षु चला गया छोड़।
देखो आ रहे हैं नगरसेठ धनराज
छैला हैं छबीले हैं अजब उनके साज।
काशी में हुआ है इन दोनों का संग
धनराज वासवदत्ता हुए एक रंग।

[वासवदत्ता का प्रवेश। सब लोग अवाक् से रह जाते हैं। वासवदत्ता सोमदत्त के पास आती है। सोमदत्त अपने आसन से उठ खड़ा होता है]

वासवदत्ता

मामा, आखिरी बात तुमने गलत कही थी।

सोमदत्त

हां—हां--हम तो ऐसे ही दिलबहलाव कर रहे थे।

वासवदत्ता

और वासवदता भी तो दिलबहलाव कर रही है। धनराज! मूर्ख और निर्बल धनराज! वासवदत्ता उसके साथ दिलबहलाव ही कर रही है। वासवदता और धनराज एक रंग नहीं हो सकते—नहीं हो सकते।

[कठपुतली के छोर अब वासवदत्ता अब अपने हाथ में ले लेती है]

धनराज वासवदता के हाथ में एक खिलौना है। जब उसका जी भर जाएगा तब वह धनराज को ठुकरा देगी। वासवदत्ता सौन्दर्य की रानी है।

[वासवदत्ता कठपुतली का खेल दिखाती है]

वासवदत्ता

वासवदत्ता रानी है, धनराज उसका दास
एक दिन खिलौना हो जाएगा नास
दो दिन की दोस्ती और दो दिन की बात
वासवदत्ता मारेगी धनराज के दो लात।

[सब लोग हंसते हैं। वासवदत्ता उठ खड़ी होती है। उसी समय एक भृत्य का प्रवेश]

भृत्य

स्वामिनी, नगरसेठ धनराज के चाचा श्रेष्ठी मारुति आए हैं।

वासवदत्ता

भेज दो !

[भृत्य जाता है। कमरे से अन्य लोग अन्दर चले जाते हैं। मारुति का प्रवेश]

वासवदत्ता

कहिए श्रेष्ठी मारुति ! नगरसेठ तो कुशल से हैं।

मारुति

हां नर्तकी वासवदत्ता ! लेकिन मुझे धनराज ने नहीं, उनकी पत्नी देवी रंजना ने भेजा है !

[वासवदत्ता कुछ आश्चर्य चकित होती है]

वासवदत्ता

देवी रंजना ने ! उन्होंने मुझे कैसे स्मरण किया ?

मारुति

उन्होंने आपको अपने यहाँ आमन्त्रित किया है।

वासवदत्ता

रंजना ने वासवदत्ता को आमन्त्रित किया है !—मैं जाऊँगी !

मारुति

बहुत बहुत धन्यवाद ! उन पर आपकी बड़ी कृपा होगी !

[वासवदत्ता ज़ोर से एक कर्कश और रूखी हँसी हँस पड़ती है]

वासवदत्ता

मुझसे कोई भी कृपा की आशा न रक्खे। मैं रंजना पर कृपा नहीं कर रही हूँ। श्रेष्ठी मारुति, मैं एक बार धनराज की पत्नी को देखना चाहती हूँ। सुना है वह बड़ी निष्ठावान् है, दयावान् है, गुणवान् है, शीलवान् है। और इससे भी अधिक सुन्दर है। मैं यह जानना चाहती हूँ कि उसमें क्या नहीं है जो मेरे पास है।

परिवर्तन

पैंसठवां दृश्य

परिवर्तन

स्थान—छप्पनवें दृश्यवाला] [चरित्र—वासवदत्ता, रंजना

[वासवदत्ता के साथ रंजना द्वार से आसनों की ओर बढ़ते हुए]

वासवदत्ता

तुम वास्तव में रूपवान् हो, शीलवान् हो। तुम्हें पाकर कोई भी पुरुष अपने को भाग्यशाली कह सकता है।

[रंजना के मुख पर एक करुण मुस्कान आती है]

रंजना

लेकिन यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर सकती।

[वासवदत्ता बैठती है लेकिन रंजना खड़ी रहती है]

रंजना

मैं स्वामी से कह कर आती हूँ, वे कितने प्रसन्न होंगे।

[वासवदत्ता रंजना का हाथ पकड़ कर अपने पास बिठाती है।]

वासवदत्ता

रहने दो ! मैं तुमसे मिलने आई हूँ—उनसे तो नित्य ही मिलती रहती हूँ ।

[दोनों पास पास बैठ जाती हैं । कुछ मौन के बाद]

वासवदत्ता

तुमने मुझे बुलाया था रंजना । कुछ कहने के लिए ।

रंजना

हाँ देवि, मैं तुमसे एक प्रार्थना करना चाहती हूँ ।

वासवदत्ता

[मुसकराती हुई]

यही कि मैं तुम्हारे पति को तुमसे न छीनं, तुम्हारे सुख-सौभाग्य में बाधक न बनूं ।

रंजना

देवि, तुम गलत समझीं । रंजना ने अपनी निधि को तुम्हारे हाथ में सौंपने के लिए तुम्हें बुलाया है । मैं तुमसे एक प्रार्थना करती हूँ, तुम गृहस्वामिनी बन कर यहाँ रहो, उनको सुखी बनाओ, उनको अपना लो । वे तुमसे कितना प्रेम करते हैं ।

[आश्चर्य-चकित वासवदत्ता रंजना की ओर देखती है]

वासवदत्ता

रंजनी जिस व्यक्ति के लिए तुम इतना बड़ा त्याग कर रही हो, क्या कभी तुमने उसके वास्तविक रूप पर ध्यान दिया है ?

रंजना

देवता में दोष देखने से पुजारिन को पाप लगता है।

वासवदत्ता

जब वह देवता हो तब न ! तुम्हारी ऐसी शील और सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा को ठुकराने वाला पुरुष नहीं है, पशु है, घृणा का पात्र है।

रंजना

देवि, उनके लिए यह मत कहो, वे तुमसे प्रेम करते हैं।

वासवदत्ता

अपने अहंकार और मद में डूबा हुआ पुरुष क्या जाने प्रेम क्या है। रूप और यौवन के पीछे दौड़ने वाले ये पुरुष पशुओं से गए बीते हैं। रंजना, मुझे किसी पुरुष से कोई सहानुभूति नहीं है।

रंजना

तो क्या तुम्हें उनसे प्रेम नहीं है--बोलो देवि। तुम उनसे प्रेम नहीं करती। तो फिर उन्हें भुलावे में क्यों डाले हुए हो।

वासवदत्ता

अपनी अहम्मन्यता और अभिमान से पागल पुरुष स्वयं अपने को छलता है—इसमें मेरा कोई दोष नहीं। अगर कोई मूर्ख मेरे हाथ का खिलौना बनना चाहता है तो उसमें मुझे क्या आपत्ति?

[वासवदत्ता के मुख पर अंकित घृणा के कठोर भाव से रंजना भयभीत हो उठती है। बल लगा कर रंजना उठ खड़ी होती है। हाथ जोड़ कर वह वासवदत्ता से कहती।]

रंजना

दया करो। उन पर, मुझ पर। उन्हें नष्ट न करो—मैं हाथ जोड़ती हूँ।

[वासवदत्ता एक कर्कश हंसी हँस पड़ती है। प्रखर स्वर में वह कहती है]

वासवदत्ता

क्यों दया करूं ? मैं विनाश के मार्ग पर चल रही हूँ। जो मेरे साथ आएगा वह बच न सकेगा वह निश्चय नष्ट होगा।

[पार्श्व के कमरे से धनराज का प्रवेश। उसका स्वर दूर से सुनाई देता है।]

धनराज

अरे वासवदत्ता ! तुम यहां ?

[रंजना धनराज को देख कर उसकी ओर दौड़ती है—आगे बढ़ते हुए धनराज को रोक कर वह कहती है।]

रंजना

प्रियतम—बचो, इस पिशाचिनी से बचो।

धनराज

तुम वासवदत्ता का अपमान कर रही हो रंजना—हटो।

रंजना

मैं तुम्हें बचाऊंगी प्रियतम। विनाश के मुख में तुम्हें न जाने दूंगी।

[रंजना धनराज का हाथ पकड़ती है। धनराज क्रोध में रंजना को झटका देता है—एक चीख के साथ रंजना गिर पड़ती है और

मूर्च्छित हो जाती है। धनराज रंजना के गिरने पर चलते चलते रुक जाता है। वासवदत्ता अपने आसन से उठ कर धनराज के पास आती है।]

वासवदत्ता

धनराज, तुमने उचित नहीं किया। उसका कोई दोष नहीं था, उसके हृदय को एक बहुत बड़ा आघात लगा है। लेकिन तुम्हें तो अपने ऊपर से अधिकार नहीं खोना चाहिए था।

[वासवदत्ता झुक कर रंजना को देखती है, फिर भूमि पर रंजना के पास बैठ जाती है।]

वासवदत्ता

मूर्च्छित हो गई है बेचारी। जाओ धनराज ! जल लाओ ! मैं कहती हूँ तुम स्वयं जाकर जल लाओ।

[धनराज श्रीहत-सा धीरे-धीरे कमरे के बाहर जाता है। वासवदत्ता रंजना पर अपने आंचल से हवा करती है। रंजना आँखें खोल कर देखती है।]

रंजना

वह कहां है ?

वासवदत्ता

उसकी चिन्ता मत करो। बर्बर और घृणित पुरुष ! स्त्री पर प्रहार करने में उसे लज्जा नहीं आई।

[रंजना उठ कर बैठने का प्रयत्न करती है।]

रंजना

यह मत कहो।

[वासवदत्ता रंजना को सहारा देकर उठाती है। वासवदत्ता और रंजना खड़ी हो जाती हैं।]

वासवदत्ता

देखो तुमने इस वासना के कीड़े को। पूरी तरह से मेरी मुट्ठी में आ गया है—हा ! हा ! हा !

[वासवदत्ता की पैशाचिक हँसी सुन कर रंजना काँप उठती है। उसे वासवदत्ता के मुख पर एक पिशाचिनी की छाया दिखती है, अति विकराल; अति कुरूप। भय से वह चीख उठती है और कमरे के बाहर भागती है। वासवदत्ता वैसी ही हंसती रहती है। धनराज जल का पात्र लेकर कमरे में आता है।]

धनराज

अरे रंजना कहां है ?

वासवदत्ता

उसकी मूर्च्छा टूट गई थी, अब वह अच्छी है, विश्राम करने के लिए अपने भवन में वह चली गई।

छाछठवां दृश्य

काट

स्थान—साठवें दृश्यवाला] [चरित्र—रंजना और मारुति ।]

[रंजना और मारुति । रंजना कांप रही है—वह बैठी है, मारुति खड़ा है ।]

मारुति

क्या बात है बहू ! बोलो तो ।

रंजना

उन्हें बचाओ चाचा । उस दानवी के चंगुल से उन्हें छुड़ाओ । वह उन्हें नष्ट कर देगी, उन्हें धूल में मिला देगी ।

मारुति

तुमने उससे बात की ?

रंजना

चाचा, कितना विकृत रूप है उसका । उसकी आंखों में भयानक हिंसा भरी है, उसकी हँसी में विनाश का व्यंग है, उसके मुख पर पैशाचिक छाया नाच रही है ।

[कुछ देर तक मारुति मौन सोचता है, फिर एक दीर्घ निश्वास लेकर कहता है ।]

मारुति

बहू, अब केवल एक उपाय दीख पड़ता है। लेकिन वह उपाय कष्टसाध्य है।

रंजना

मैं सब कष्ट सहन करुंगी, लेकिन अपने स्वामी को इस पिशाचनी से बचाऊंगी। बोलो चाचा।

मारुति

केवल भगवान उपगुप्त धनराज को बचा सकते हैं। लेकिन उपगुप्त इस मामले में पड़ेंगे नहीं। अगर तू स्वयं उनके पास जाकर उनसे प्रार्थना करे तो बहुत सम्भव है वह तेरी बिन्ती सुन लें वैसे है तो बड़ा कठिन।

[रंजना के मुख पर आशा की एक चमक आती है।]

रंजना

जाऊगी चाचा। भइया से भिक्षा मागूंगी, हठ करूंगी। मैं उन्हें यहां लाऊँगी—

क्रमालोप

सड़सठवां दृश्य

क्रमदर्शन

स्थान—एक बौद्ध विहार का बाहरी भाग] [चरित्र—रंजना, दासियाँ, सैनिक आदि।

[पालकी पर रंजना बैठी है। मारुति रथ पर है। अश्वारोही

आगे पीछे चल रहे हैं। दूर पर एक बौद्ध विहार के दर्शन होते हैं। उसका बाहरी भाग सामने है। सब लोग उधर बढ़ते हैं।]

काट

अड़सठवां दृश्य

काट

स्थान—बिहार का भीतरी प्रांगण] [चरित्र—भिक्षु आदि

[बिहार के भीतरी प्रांगण में बौद्ध भिक्षु खड़े हैं। प्रार्थना हो रही है—गम्भीर भाव से सब लोग एक स्वर में प्रार्थना कर रहे हैं।]

काट

उनहत्तरवाँ दृश्य

काट

स्थान—विहार का पूजा गृह] [चरित्र—उपगुप्त—अन्य भिक्षु

[उपगुप्त बुद्ध की विशालकाय मूर्ति के सामने खड़ा हुआ प्रार्थना कर रहा है]

काट

सत्तरवां दृश्य

काट

स्थान—बिहार की प्राचीर से मिला हुआ एक भवन] [चरित्र—रंजना, बौद्ध भिक्षु, अन्य व्यक्ति।]

बौद्ध भिक्ष

आदेश देवि का ?

रंजना

मैं पीठ स्थविर भगवान् उपगुप्त से मिलना चाहती हूँ

भिक्षु

बैठो देवि, ये सबके सब भिक्षु बनना चाहते हैं, किन्तु भिक्षु बनना सरल नहीं है। भगवान् उपगुप्त बहुत छानबीन करके लोगों को मठ में प्रश्रय देते हैं।

रंजना

मैं मठ में प्रश्रय लेने नहीं आई हूँ।

भिक्षु

तो फिर उनसे क्या काम है—लो, प्रार्थना समाप्त करके वे आ रहे हैं।

[उपगुप्त प्राचीर के बाहर निकलते हैं। रंजना दौड़ कर उपगुप्त के चरणों पर गिर पड़ती है]

रंजना

भइया ! भइया ! मुझे बचाओ !

[उपगुप्त रंजना को उठा कर उसके सिर पर हाथ रखता है]

उपगुप्त

उठो बहिन ! तुम्हारा कल्याण हो।

परिवर्तन

इकहत्तरवां दृश्य

परिवर्तन

स्थान—उपगुप्त का कक्ष] [चरित्र—उपगुप्त और रंजना

रंजना

वह पिशाचनी है भइया—घृणा की साकार प्रतिमा।

उपगुप्त

ऐसा न कहो बहन ! वह दया की पात्र है। मार्ग भूल गई है।

रंजना

भइया—अपनी बहिन पर दया करो—उसको बिनाश से बचाओ। वे उसके पीछे पागल हो रहे हैं। वह उन्हें मिटा देगी।

उपगुप्त

धनराज भी मार्ग भूल गये हैं बहिन ! जो बिनाश का मार्ग ग्रहण कर ले उसे बचा सकना मेरे बश में नहीं है।

रंजना

तुम सब कुछ कर सकते हो। अपनी बहिन की ओर देखो भइया। एकमात्र तुम्हारा अवलम्ब है — मुझे निराश न करो।

[रंजना की आंखों से आंसू गिर रहे हैं। उपगुप्त कुछ देर तक सोचता है—उसके मुख पर एक प्रकार की कठोरता आ जाती है]

उपगुप्त

तो फिर ऐसा ही हो बहिन। धनराज को उसके विनाश से बचाने का प्रयत्न करूंगा। भगवन्! इस अनधिकार कार्य के लिये क्षमा प्रार्थी हूं—पर क्या करूं, बहिन की ममता के आगे झुकना पड़ रहा है। चलो बहिन!

क्रमालोप

बहत्तरवां दृश्य

क्रम दर्शन

स्थान—सैंतीसवें दृश्य वाला] [चरि—धनराजत्र, वासवदत्ता और सुलेखा

[धनराज और वासवदत्ता बैठे हैं, सुलेखा सामने खड़ी है, उसकी आंखों में आंसू हैं]

वासवदत्ता

बोलती क्यों नहीं! यह आंख में आंसू क्यों भरे हैं!

सुलेखा

स्वामिनी, सोमदत्त मामा कहीं चले गए!

वासवदत्ता

मामा कहीं चले गए—कब! क्यों!

सुलेखा

आज प्रातःकाल मुझ से लड़ कर चले गए। कह गए हैं कि सन्यासी बन जाएंगे। मेरा मुंह न देखेंगे।

[वासवदत्ता चिन्तित हो जाती है]

वासवदत्ता

तूने मुझे पहले क्यों नहीं बताया ?

सुलेखा

मैं बतलाती क्या स्वामिनी, आज सुबह से उन्हें ढूंढ़ रही हूँ। दशाश्वमेध, मणिकर्णिका, असी—सब घाटों के चक्कर लगाए। नगर भर छान डाला, लेकिन उनका कहीं पता नहीं लगा। मुझ अभागी के सिर पर कलंक लगा गए।

वासवदत्ता

मैंने इतना कहा कि उन्हें अधिक न सताया कर। देख लिया न परिणाम। धनराज! तुम अपने कर्मचारियों को मामा का पता लगाने भेजो।

[धनराज जम्हाई लेता है, जैसे उसे इस सब में तनिक भी रुचि नहीं है]

धनराज

जो गया उसकी चिन्ता ही क्या ? रंजना चली गई। कोई कहता है, अपने पिता के यहां गई है, कोई कहता है, अपने भाई के यहां गई है, कोई कहता है कि गंगा में डूब गई। लेकिन मैंने तो उसका पता नहीं लगाया।

वासवदत्ता

क्या कहा ? रंजना चली गई और तुम्हारे मुख पर चिन्ता की रेखा तक नहीं आई। तुम मनुष्य हो धनराज ?

[धनराज लम्पट पागल की सी हंसी हंसता है]

धनराज

था तो, लेकिन अब क्या हूँ, कह नहीं सकता। छोड़ो भी, मेरा पात्र रिक्त है, इसे भर दो वासवदत्ता।

वासवदत्ता

नहीं धनराज, इस समय मैं अपने आपे में नहीं हूँ। मामा का पता लगाना ही होगा।

काट

तिहत्तरवां दृश्य

काट

स्थान—बत्तीसवें दृश्य वाला] [चरित्र—सोमदत्त, मारुति

[मारुति भवन की ओर जा रहा है उपगुप्त की कुटी के पास से। वह सोमदत्त का स्वर सुनता है]

सोमदत्त

महाशय मारुति। अरे ओ महाशय मारुति।

[सोमदत्त उपगुप्त की कुटी से दबे पाँव निकल कर द्वार पर खड़ा होता है। सोमदत्त गेरुआ वस्त्र पहने हुए है— हाथ में माला है]

मारुति

अरे महाशय सोमदत्त जी। यह क्या धजा बना रक्खी है आपने ?

[मारुति सोमदत्त के पास जाता है]

मारुति

कहिये, क्या काम है ?

सोमदत्त

बात यह है कि मैंने वैराग्य ले लिया है।

मारुति

बिल्कुल ठीक किया। दुनिया में जो कुछ हो रहा है उससे वैराग्य की भावना जाग उठना स्वाभाविक है।

सोमदत्त

लेकिन चित्त नहीं जम रहा है।

मारुति

धीरे धीरे हो जाएगा। अभी तो वैराग्य का बीज पड़ा है, इतनी शीघ्रता की क्या बात है।

सोमदत्त

आप समझते नहीं मारुति। आप मेरी कुछ सहायता कीजिए।

मारुति

हां हां—सहायता करना तो हमारा धर्म है ! कहिये।

सौमदत्त

कुछ ऐसा प्रबन्ध कर दीजिए कि चित्त जमे।

मारुति

क्या क्या चाहिए आपको ?

सोमदत्त

एक छटांक चरस और एक घड़ा अच्छी अंगूरी मदिरा। यह छिपा कर भेजिएगा जिससे घरवालों को पता न चले। मैं अज्ञातवास की तपस्या कर रहा हूँ। गंगा के मार्ग से लाइयेगा।

[मारुति ज़ोर से हँसता है]

मारुति

साधुवाद महाशय सोमदत्त। चिन्ता न कीजिए—संध्या तक सब चीजें आ जाएंगी।

[मारुति चलता है, सोमदत्त भीतर जाकर कुटी बन्द कर लेता है। जिस समय वह भवन के पास पहुँचता है उसी समय वासवदत्ता, धनराज और सुलेखा बाहर निकलते हैं]

मारुति

धनराज !

वासवदत्ता

लो श्रेष्ठी मारुति भी आ गए। [मारुति से] मामा का आज सुबह से पता नहीं। सारा नगर छान डाला, अब क्या किया जाय ?

मारुति [मुसकराते हुए]

बगल में बच्चा नगर में ढिंढोरा

कहें चाचा मारुति दिया तले अँधेरा

वासवदत्ता

क्या मतलब आपका ?

मारुति

हमारा मतलब इतना कि एक छटांक चरस और एक घड़ा मदिरा लेकर भगवान् उपगुप्त की कुटी को पवित्र कीजिए, तपस्वी और वैरागी सोमदत्त आप लोगों को वहां मिल जाएंगे।

सुलेखा

इतना छल मुझसे। मैं अभी बताती हूँ।

[सुलेखा तेज़ी से उपगुप्त की कुटी की ओर जाती है]

धनराज

कैसे आए ?

मारुति

बहू लौट आई हैं।

वासवदत्ता

जाओ धनराज, अपनी पत्नी से मिलो जाकर। उसकी भावना का ध्यान रक्खो। मैं मामा के पास जाती हूँ।

[वासवदत्ता जाती है—धनराज भी विवश सा चलता है]

परिवर्तन

चौहत्तरवां दृश्य

परिवर्तन

[स्थान—छप्पनवें दृश्य वाला] [चरित्र—उपगुप्त, धनराज]

[धनराज कमरे में प्रवेश करता है। उपगुप्त शान्त बैठा हुआ है।

धनराज

अरे उपगुप्त तुम !

[धनराज उपगुप्त की ओर दौड़ता है। उपगुप्त खड़ा होता है, दोनो मित्र गले मिलते हैं।]

धनराज

कब आए !

उपगुप्त

अभी, बहिन रंजना के साथ !

[धनराज के मस्तक पर बल पड़ जाते हैं]

धनराज

तो रंजना तुम्हारे यहां गई थी।

उपगुप्त

हां धनराज। और वह मुझे अपने साथ यहां ले आई है कि मैं तुम्हें विनाश से बचाऊँ।

[धनराज जोर से हंस पड़ता है]

धनराज

तो तुम मुझे विनाश से बचाने आए हो। कैसी अद्भुत बात है, मुझे विनाश से बचाने आए हो। धन्यवाद उपगुप्त, तुम्हारी सहायता सद्भावना, सदिच्छा के लिए शत शत धन्यवाद।

[इस बार उपगुप्त मुसकराता है]

उपगुप्त

धन्यवाद मुझे न दो, धन्यवाद अपनी पत्नी को दो जो तुम्हारे लिए इतना अधिक चिन्तित है, जो तुम्हें वासना के नरक से बचाना चाहती है।

धनराज

क्या कहा—वासना का नरक ? उपगुप्त, जो प्रेम के स्वर्ग को वासना का नरक कहता है उसकी बुद्धि पर मुझे तरस आता है। वासवदत्ता में मैंने प्रेम के असली रूप को देखा है।

उपगुप्त

धनराज, तुम अपने को धोखा दे रहे हो। मैं तुमसे कहता हूँ कि वासवदत्ता तुमसे प्रेम नहीं करती।

धनराज

जो स्त्री मथुरा का राजवैभव छोड़ कर मेरे लिए काशी दौड़ी आई हो, उसके लिए तुम कहते हो कि वह मुझसे प्रेम नहीं करती।

उपगुप्त

हां धनराज, वह तुमसे प्रेम नहीं करती। वह जो मथुरा का राजवैभव छोड़ कर आई है वह तुम्हारे लिए नहीं, वरन किसी दूसरे के लिए।

[धनराज पागल सा कमरे में घूमता है, फिर एकाएक उपगुप्त के आगे रुक जाता है]

धनराज

यदि तुम इसे प्रमाणित कर दो तो मैं वासवदत्ता का मुख न देखूँगा—मैं वचन देता हूँ। [कुछ रुक कर] और उपगुप्त, यदि तुम इसे प्रमाणित न कर सके तो फिर मैं तुम्हारा मुख न देखूँगा।

उपगुप्त

स्वीकार है धनराज। किस प्रकार मैं यह प्रमाणित करूँ मेरी समझ में नहीं आता। तुम कोई उपाय बता सकते हो ?

[धनराज कुछ देर तक सोचता है]

धनराज

उपगुप्त ! वासवदत्ता ने नृत्य करना छोड़ दिया है। मेरे अनेकों अनुरोधों पर भी उसने काशी में नृत्य नहीं किया है। यदि वह तुम्हारे कहने से नृत्य करे तो मैं उस पर तुम्हारे प्रभाव को स्वीकार कर लूंगा।

उपगुप्त

स्वीकार है।

क्रमालोप

पचहत्तरवां दृश्य

क्रम दर्शन

[स्थान—सैंतीसवें दृश्यवाला]

[चरित्र—धनराज, उसके मित्र, वासवदत्ता, उपगुप्त

[धनराज और धनराज के मित्र बैठे हैं—वासवदत्ता के सामने मदिरा है, और वह अपने अतिथियों के मदिरा के पात्र भर रही है]

धनराज

रूप और यौवन की रानी के हाथ से एक प्याला और पियो कवि विशाल।

विशाल

कल्पना और सुन्दरता की दुनिया में विचरण करने वाले कवि विशाल के लिए वासवदत्ता की एक मतवाली चितवन मदिरा के अनगिन्ती प्यालो से अधिक मादक है।

[विशाल इस समय तक पीकर मतवाला बन गया है। वह अपना पात्र उलटा कर वासवदत्ता के सामने रखता है और अजीब तरह से वासवदत्ता की ओर देखता, है सब लोग हंसते हैं]

विशाल

हँसते हो ! हँसो, हँसो, मूर्खों की भांति जी भर कर हँसो। तुम क्या जानों कि यह प्रेम का मार्ग कितना कठिन है, और वह भी देवी वासवदत्ता के प्रेम का मार्ग।

मेरी एक कविता सुनोगे ?– आज ही सुन्दरी वासवदत्ता पर लिखी है।

धनराज

सच —मेरे प्रिय विशाल—और तुमने मुझे अभी तक नहीं सुनाई।

विशाल

एक सुन्दरी—स्वर्ग की परी
यहां हमारे आंगन उतरी

वासवदत्ता उसका नाम !
छैल छबीले हम मतवाले
या उजियाले या अँधियाले
मर मिटना है अपना काम !

[विशाल कविता पढ़ते पढ़ते रुक जाता है]

वासवदत्ता

क्यों, रुक क्यों गए कवि !

विशाल

वर कांप रहा है, गला सूख रहा है। पात्र रिक्त है। उसे भर दो रूप और यौवन की रानी।

[वासवदत्ता जैसे ही विशाल का पात्र भरने को होती है—उसे उपगुप्त का स्वर सुनाई देता है जो बाहर से आ रहा है। वासवदत्ता सहसा चौंक उठती है]

उपगुप्त का गान

कैसी है यह तृषा कि जिसमें जलता रहता प्राण शरीर।
अपने ही अज्ञान जाल में चेतन मानव विकल अधीर।
यह सुख यह वैभव झूठा है, इस अशान्ति की ज्वाला में
हंसी सत्य है नहीं, सत्य है केवल इन नैनों का नीर
प्रेम सुधा लुट रही। अभागे, निज जीवन का पात्र भरो
यह अग जग पीड़ित अति दुख से दया करो तुम दया करो।

[वासवदत्ता जैसे पंक्तियां स्पष्ट होती जाती हैं वैसे द्वार की ओर मुड़कर देखती है। उपगुप्त का प्रवेश]

धनराज

भिक्षु उपगुप्त ! स्वागत ।

[धनराज खड़ा हो जाता है, धनराज के साथ सब लोग उठ खड़े होते हैं और उपगुप्त का स्वागत करते हैं]

वासवदत्ता

आसन ग्रहण करो भिक्षु !

उपगुप्त

धन्यवाद नर्तकी !

[सब लोग अपने अपने सुरा-पात्र छिपाने का प्रयत्न करते हैं। वासवदत्ता विशाल के पात्र को उठा कर भरती है]

वासवदत्ता

कवि विशाल जो काम करो वह खुल कर करो। जो कुछ छिपा कर किया जाता है वही पाप है। भिक्षु उपगुप्त का क्या मत है ?

उपगुप्त

पाप और पुण्य का ज्ञान नर्तकी वासवदत्ता को मिल गया—इस पर मेरी उसे बधाई ।

[वासवदत्ता एक तीखी हंसी हंसती है। वह अपना मदिरा का पात्र भरती है और अपने अधरों तक वह पात्र ले जाती है]

वासवदत्ता

अगर भिक्षु उपगुप्त ने मुझे ज्ञान देने के लिए यहां आने का कष्ट उठाया है तो उन्होंने भूल की। नर्तकी वासवदत्ता को अब भिक्षु उपगुप्त के ज्ञान की आवश्यकता नहीं ।

[उपगुप्त के मुख पर एक मृदु मुसकान आती है]

उपगुप्त

नर्तकी वासवदत्ता को किस चीज की आवश्यकता है, इसे वह स्वयं नहीं जानती।

[मानो उपगुप्त के गुणगान से मुग्ध होकर वासवदत्ता उपगुप्त की ओर बढ़ती है। वह उपगुप्त की ओर विमुग्ध सी देखती है—उसके सामने रुकती है]

वासवदत्ता

भिक्षु उपगुप्त! क्या वास्तव में मुझे आज तुम्हारी आवश्यकता है जो तुम बिना बुलाए मेरे यहाँ आए हो?

[उपगुप्त इस बात का कोई उत्तर नहीं देता। वासवदत्ता का सारा शरीर पुलकित हो उठता है, उसके मुख पर मधुर मुस्कान आ जाती है]

वासवदत्ता

स्वागत है भिक्षु। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी।

धनराज

और उपगुप्त के स्वागत में मैं वासवदत्ता से अनुरोध करूंगा कि वह आज नृत्य करे। क्यों मित्रो?

सब लोग

हम लोग उसे अपना सौभाग्य समझेंगे—रूप और यौवन की रानी!

वासवदत्ता

तुम जानते हो धनराज, मैंने नृत्य न करने की प्रतिज्ञा कर ली है।

धनराज

कला की सम्राज्ञी ने अपनी कला छोड़ दी—हम लोगों का अनुरोध उसे अपने हठ से नहीं डिगा सकता। उपगुप्त, यदि तुम वासवदत्ता को उसके हठ से हटा सको तो तुम कला के साथ बहुत बड़ा उपकार करोगे।

[वासवदत्ता उपगुप्त की ओर देखती है। उपगुप्त थोड़ी देर तक मौन रहता है, फिर कहता है]

उपगुप्त

नर्तकी वासवदत्ता—तुमसे मेरी यह प्रथम प्रार्थना है—क्या तुम आज नृत्य करोगी!

वासवदत्ता

भिक्षु उपगुप्त—क्या यह तुम्हारा अनुरोध है!

उपगुप्त

मेरी प्रार्थना है नर्तकी! तुम्हें पूर्ण अधिकार है कि तुम इसे स्वीकार करो या अस्वीकार कर दो।

वासवदत्ता

नर्तकी वासवदत्ता के लिए भिक्षु उपगुप्त की एक छोटी से छोटी प्रार्थना बहुत बड़ी आज्ञा के समान है।—

[वासवदत्ता अपना मदिरा का पात्र फेंक देती है—एक झोंके की भांति वह वहां से जाती है—और उसी झोंके के साथ उसका नृत्य आरम्भ होता है। नृत्य के साथ वह गाती है]

नृत्य-सगीत

अपने पिया के गले लगूंगी
कलंक लगे तो लगे मोरी आली !
आज पुलक बौरी अम्बा की डाली
आज कुहुक उठी कोयल काली
कलियों ने रस का दिया दान हँस के
भ्रमरों ने झुक झूम प्यास बुझाली
पिया मेरे आए—प्रणय मधु छाने
वे रूप के लोभी, वे रस के दिवाने।
अपने पिया के सुरग रंग रमूंगी
जो व्यंग लगे सो लगे मेरी आली !

[इस नृत्य के साथ धनराज का मुख श्वेत पड़ता जाता है। नृत्य समाप्त होने पर धनराज उठता है और वासवदत्ता के पास जाता है। वासवदत्ता नृत्य समाप्त करके उपगुप्त के चरणों पर बैठी है]

धनराज

वासवदत्ता ! तो तुम मुझसे प्रेम नहीं करती थीं ?

वासवदत्ता

तुमसे प्रेम धनराज ! वासवदत्ता तुमसे प्रेम कर सकती है—इसका तुम्हें भ्रम कैसे हो गया !

धनराज

तो अभी तक तुम मुझसे खिलवाड़ कर रही थीं ?

वासवदत्ता

तुम समझते हो खिलवाड़ करने का अधिकार केवल पुरुषों को ही है, स्त्री को नहीं है। लेकिन धनराज ! मैं तुमसे खिलवाड़ नहीं कर रही थी, मैं अपने प्रियतम के वियोग में तुमसे, इन सब लोगों से जी बहला रही थी। अब मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं। मेरे प्रियतम आ गए हैं। तुम जा सकते हो, यह सब जा सकते हैं।

[धनराज और उसके मित्र वहां से चले जाते हैं। उपगुप्त चुपचाप बैठा रहता है। थोड़ी देर में उपगुप्त उठता है]

उपगुप्त

तुम जिनसे अपना मन बहला रही थीं नर्तकी, वे सब चले गए। तुम जिसको बहलाना चाहती हो वह उपगुप्त भी अब चलेगा।

वासवदत्ता

उपगुप्त !

उपगुप्त

दुःख और पीड़ा से कराहती हुई इस दुनिया में वैभव, विलास और वासना में अपने को खो देने वाली वासवदत्ता ! यह याद रखना कि जीवन हंसी-खेल नहीं है, मन बहलाव जीवन नहीं है, एक कठोर साधना है।

वासवदत्ता

मैं उस कठोर साधना के लिए उद्यत हूँ भिक्षु ! तुम मुझे अपनी दासी बनाओ ! तुम जैसा कहोगे वैसा मैं करूँगी ।

उपगुप्त

तुम अपने को धोखा दे रही हो नर्तकी ! तुम्हारी वासना पागलपन की उस सीमा तक पहुँच गई है जहां तुम्हारे लिए बड़े से बड़ा कष्ट भी कुछ नहीं है । जहां तुम मृत्यु तक से खेल सकती हो, उसे तुम साधना मत कहो । साधना का त्याग, साधना की गम्भीरता इनका तुम में नितान्त अभाव है ।

[उपगुप्त द्वार की ओर बढ़ता है पर एकाएक वासवदत्ता का कर्कश स्वर सुन कर रुक जाता है]

वासवदत्ता

ठहरो भिक्षु !

[वासवदत्ता उपगुप्त के सामने जाती है]

वासवदत्ता

साधना और ज्ञान के दर्प में चूर भिक्षु ! अब मैं समझी कि तुम मेरे यहां क्यों आए थे ।

उपगुप्त

नियति द्वारा निर्धारित मैं अपने अपराध का दण्ड भोगने के लिए प्रस्तुत हूँ नर्तकी ।

वासवदत्ता

लेकिन वह वासवदत्ता जिसे तुमने अपमानित किया है, लांछित किया है, आज तुम से कहती है कि तुम घृणित हो, तुम पिशाच हो! तुमने आग के साथ खिलवाड़ किया है भिक्षु! तुम, तुम्हारा सम्प्रदाय, सारी दुनिया मेरी प्रतिहिंसा की अग्नि की लपटों में भस्म हो जाएंगे।

क्रमालोप

छिहत्तरवां दृश्य

क्रम दर्शन

स्थान—चौथे दृश्यवाला] [चरित्र—वासवदत्ता

[वासवदत्ता मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ती है। लोग चकित से वासवदत्ता को देखते हैं]

काट

सतहत्तरवां दृश्य

काट

स्थान—पांचवें दृश्यवाला] [चरित्र—वासवदत्ता और पुजारी

[काली की मूर्ति के चरणों पर पुजारी बैठा है। वासवदत्ता मन्दिर में प्रवेश करती है। पुजारी आश्चर्य चकित होकर उठ खड़ा होता है।]

पुजारी

देवि वासवदत्ता ! तुम फिर मथुरा लौट आईं !

वासवदत्ता

हां पुजारी !

[वासवदत्ता काली की प्रतिमा के पैरों पर पड़ती है]

वासवदत्ता

माता ! निराश और पराजित मैं लौट आई हूँ। तेरे चरणों का ही आश्रय है मुझे। जो कुछ मेरे अपराध हो गए हैं उन्हें क्षमा कर। मुझे अपना, मुझे शक्ति दे, मुझे बल दे।

[पुजारी वासवदत्ता के मस्तक पर पुष्प डालता है]

पुजारी

उठो वासवदत्ता। माता तुम पर प्रसन्न हैं—वह तुम्हें बल देंगी।

[वासवदत्ता प्रतिमा के चरणों से उठती है। पुजारी के सम्मुख वह होती है]

पुजारी

वासवदत्ता ! तुम्हें बड़ी अशान्ति और विपत्ति का सामना करना पड़ा है।

वासवदत्ता

हां पुजारी।

[पुजारी थोड़ी देर तक वासवदत्ता को देखता है, एकाएक उसकी आंखें चमक उठती हैं]

पुजारी

वासवदत्ता तुम्हें स्मरण है उस दिन जब तुम्हारी पूजा खण्डित हो गई थी।

वासवदत्ता

हां पुजारी !

पुजारी

माता ने उस दिन तुम्हें आदेश दिया था कि महाराज क्षेमेन्द्र पर अपने प्रभाव से फिर से बलि-प्रदान आरम्भ कराओ। उस आज्ञा को न मानने का तुम्हें दण्ड मिला है।

[वासवदत्ता मौन रहती है]

पुजारी

वासवदत्ता ! तुम्हें बौद्धों के प्रभाव से मथुरा राज्य को, महाराज क्षेमेन्द्र को बचाना होगा। माता को तुम वचन दो।

वासवदत्ता

मैं वचन देती हूँ।

[पुजारी घण्टे बजाता है—घण्टों से एक भयानक स्वर निकलता है]

परिवर्तन

अठहत्तरवां दृश्य

स्थान—सत्रहवें दृश्यवाला] [चरित्र—क्षेमेन्द्र, वासवदत्ता, दासी

[क्षेमेन्द्र आधा बैठा आधा लेटा है। उसका मुख पीला पड़ गया है मानो वह बीमार हो। एक परिचारिका वहां बैठी है जो क्षेमेन्द्र को मदिरा दे रही है। वासवदत्ता का प्रवेश]

वासवदत्ता

महाराज!

क्षेमेन्द्र

कौन?—वासवदत्ता—वासवदत्ता! [क्षेमेन्द्र उठता है] मैं सपना तो नहीं देख रहा हूँ?

[क्षेमेन्द्र वासवदत्ता के पास जाता है]

क्षेमेन्द्र

तुम लौट आईं। मैंने कहा था कि तुम लौटोगी! मेरा प्रेम तुम्हें खींच लाएगा! बोलती क्यों नहीं?

[वासवदत्ता का हाथ पकड़ कर क्षेमेन्द्र आसन तक ले आता है। उसे अपने पास बिठलाता है]

क्षेमेन्द्र

वासवदत्ता—मेरी वासवदत्ता आ गई। आज मैं स्वयं अपने हाथों से उसका मदिरा का पात्र भरूंगा।

[क्षेमेन्द्र वासवदत्ता के लिए मदिरा का पात्र भरता है, और उसके होठों तक वह पात्र ले जाता है। वासवदत्ता अपना मुंह फेर लेती है]

क्षेमेन्द्र

क्या हुआ ? तुम एक दम बदल गई हो—क्या बात है ? अब मैं तुम्हें अपने से अलग नहीं होने दूँगा। तुम चली क्यों गई थीं ?

वासवदत्ता

इस भोग विलास से मेरा मन ऊब गया था !

क्षेमेन्द्र

[हंसता हुआ]

हां सुना था कि तुम काशी गई हो। तो तुम शान्ति पाने गई थीं। लेकिन दिखता है कि शान्ति मिली नहीं।

वासवदत्ता

एक भयानक अशान्ति लेकर लौटी हूँ।

क्षेमेन्द्र

क्षेमेन्द्र के पास ! क्षेमेन्द्र ही तुम्हारी अशान्ति दूर कर सकता है। क्षेमेन्द्र तुम्हारी अशान्ति दूर करेगा। बोलो वासवदत्ता। क्या है वह अशान्ति, और कैसे दूर होगी ?

वासवदत्ता

मैं महाराज की प्रियतमा हूँ न।

क्षेमेन्द्र

क्षेमेन्द्र तुम पर प्राण तक न्यौछावर कर सकता है।

वासवदत्ता

तो मैं अनुभव करना चाहती हूँ कि मैं महारानी हूँ। मैं शक्ति चाहती हूँ, सत्ता चाहती हूँ, मैं शासन करना चाहती हूँ।

क्षेमेन्द्र

[हंसता है]

बस इतनी सी बात। आज से जैसा तुम कहोगी वैसा ही होगा। तुम्हारी आज्ञा सब मानेंगे, तुम्हारा शासन चलेगा।

परिवर्तन

उन्नासीवां दृश्य

वासवदत्ता की राज्याज्ञाओं के चल दर्शन। प्रथम दर्शन...

१

वासवदत्ता एक आज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करती है और राज्य की मोहर लगाती है।

"मथुरा राज्य के मंदिरों में जिस राज्याज्ञा से बलिदान बन्द किया गया था, वह राज्याज्ञा वापिस ली जाती है। अब मन्दिरों में बलि प्रदान हो सकेगा।"

२

एक हरकारा कहता हुआ राजमार्ग पर चल रहा है।

"महारानी वासवदत्ता की आज्ञा से मथुरा नगर के सार्वजनिक स्थानों में उपदेश देने की मनाही की जाती है। इस आज्ञा को तोड़ने वाले भिक्षु को राज्य दंड मिलेगा।"

३

दो नागरिक आपस में बातें कर रहे हैं।

प्रथम नागरिक...मथुरा राज्य के सकल बौद्ध विहार एवं मठ राज्य के अधिकार में ले लिए हैं...यह तो बड़ा अनुचित है।

दूसरा नागरिक...दूसरी आज्ञा तो और भी भयानक है! एक सप्ताह के अन्दर ही बौद्ध भिक्षुओं को राज्य की सीमा से बाहर निकल जाने को कहा गया गया है। अन्यथा वे बन्दी बना लिए जाएंगे।

परिवर्तन

अस्सीवां दृश्य

परिवर्तन

स्थान — सत्रहवें दृश्य वाला] [चरित्र—क्षेमेन्द्र, मन्त्रीगण, वासवदत्ता

[क्षेमेन्द्र सिर झुकाए आसन पर बैठा है। प्रधान मंत्री और राजगुरु खड़े हैं। प्रधान मंत्री के हाथ में कुछ राज्याज्ञाएं हैं। वह राज्याज्ञाओं को क्षेमेन्द्र के सामने रखता है]

प्रधान मंत्री

क्या इन राज्याज्ञाओं को निकालने का अधिकार आपने नर्तकी वासवदत्ता को दिया है?

क्षेमेन्द्र

हां बुद्धिवर्द्धन। आप लोगों के लिए जैसा मैं वैसी वासवदत्ता।

राजगुरु

आपने ये राज्याज्ञाएं देखी हैं?

क्षेमेन्द्र

मेरे देखने की क्या आवश्यकता। वासवदत्ता जो कुछ करेगी वह ठीक ही करेगी।

बुद्धिवर्द्धन

महाराज, आपको पता है कि मन्दिरों में बलि प्रदान फिर से प्रारम्भ हो गया है।

क्षेमेन्द्र

मन्दिरों में बलि प्रदान! क्या कहते हो बुद्धिवर्द्धन। बलि प्रदान करने वालों को दंड दो।

[बुद्धिवर्द्धन राज्याज्ञा क्षेमेन्द्र के सामने रख देता है। क्षेमेन्द्र पढ़ कर चकित सा हो जाता है। बुद्धिवर्द्धन अन्य राज्याज्ञाएं भी क्षेमेन्द्र के सामने रखता है]

बुद्धिवर्द्धन

और यह...और यह।

क्षेमेन्द्र

आश्चर्य की बात है। वासवदत्ता कहां है?

[क्षेमेन्द्र अपनी बात पूरी नहीं कर पाता कि वासवदत्ता का प्रवेश]

वासवदत्ता

महाराज ने मुझे याद किया है ?

[क्षेमेन्द्र घबराया सा मंत्री और राजगुरु को देखता है । वासवदत्ता गुरुता के भाव से क्षेमेन्द्र के आसन के पास आकर खड़ी हो जाती है]

वासवदत्ता

आप लोगों ने कैसे कष्ट किया ?

क्षेमेन्द्र

यह लोग कुछ राज काज की बात करने आए हैं ।

[वासवदत्ता राज्याज्ञाओं की ओर देखती है, फिर उन्हें अपने हाथ में ले लेती है]

वासवदत्ता

इन राज्याज्ञाओं पर क्या आप लोगों को कुछ आपत्ति है ?

राजगुरु

इन आज्ञाओं में मनुष्यता को चुनौती दी गई है, पशुता को अपनाया गया है । हिंसा और रक्तपात को उत्साहित किया गया है ।

वासवदत्ता

[तेज़ी के साथ]

राजगुरु !

बुद्धिवर्द्धन

नर्तकी वासवदत्ता ! राजगुरु का आसन महाराज के आसन से ऊँचा है।

[वासवदत्ता क्रोध में क्षेमेन्द्र की ओर देखती है]

क्षेमेन्द्र

शान्त हो वासवदत्ता ! राजगुरु पूज्य हैं और मन्त्री राज्य के योग्य कर्मचारी हैं। इनकी बात पर ध्यान दो।

वासवदत्ता

ये लोग अयोग्य हैं। देवताओं का अपमान करने वाले, पाखण्डी और झूठे भिक्षुओं को मानने वाले ये राज्य के कर्मचारी राज्य को बलहीन और शक्तिहीन बना कर महाराज क्षेमेन्द्र की सत्ता मिटा देंगे।

[एक गहरा सन्नाटा छा जाता है—क्षेमेन्द्र कुछ चिन्तित सा दिखता है]

राजगुरु

वेश्या के वश में रहने वाले कामुक राजा का विनाश निश्चय है क्षेमेन्द्र। आज तुम्हें चुनना है कि तुम हम लोगों को साथ रक्खोगे या उस वेश्या को।

क्षेमेन्द्र

आप लोग अभी जाइये ! मैं कोई उपाय निकालने का प्रयत्न करूंगा।

वासवदत्ता

नहीं महाराज ! आज आपको चुनना ही पड़ेगा । आपके सामने ही आपकी प्रेयसी का अपमान करने वाले इन मूर्ख धर्माश्रयों में और मुझ में ।

क्षेमेन्द्र

वासवदत्ता का अपमान मेरा अपमान है मन्त्री । वासवदत्ता की आज्ञा को तुम लोग मेरी आज्ञा समझो ।

राजगुरु

तो तुम दोनों का विनाश अनिवार्य है ।

[राजगुरु और मंत्री का प्रस्थान]

परिवर्तन

इक्यासीवां दृश्य

बौद्धों पर अत्याचार वाले चल दृश्य

१

बौद्धों के विहार जलाए जा रहे हैं ।

२

बौद्ध भिक्षुओं को राज्य की सीमा से निकाला जा रहा है ।

३

सत्याग्रह करने वाले बौद्ध- भिक्षुओं को बन्दी बनाया जा रहा है ।

परिवर्तन

बयासीवां दृश्य

परिवर्तन

स्थान—पांचवें दृश्यवाला] [चरित्र—पुजारी और वासवदत्ता

[हवन की अग्नि जल रही है—वासवदत्ता काली की मूर्ति के सामने बैठी है। पुजारी वासवदत्ता के मस्तक पर तिलक लगाता है। मन्दिर के घण्टे बजते हैं, एक भयानक स्वर उठता है। वासवदत्ता मुसकराती है]

पुजारी

देवि वासवदत्ता—तुम्हारी वार्षिक पूजा निकट आ रही है। उस दिन माता पर प्रथम बलि चढ़ेगी।

वासवदत्ता

और माता को प्रथम बलि—नर-बलि होगी।

पुजारी

नरबलि !—नरबलि !

वासवदत्ता

उन बौद्ध भिक्षुओं की बलि जिन्होंने मेरी आज्ञा न मान कर मेरी सत्ता को चुनौती दी है।

क्रमालोप

तिरासीवां दृश्य

क्रम दर्शन

स्थान—प्रथम दृश्य वाला] [चरित्र - वासवदत्ता आदि आदि

[वासवदत्ता का जलूस निकल रहा है। पर इस बार बाज़ार बन्द है—मार्ग उजाड़ पड़ा है। वासवदत्ता स्वयं रथ संचालित कर रही है--उसके मुख पर कठोरता के भाव। हैं]

काट

चौरासीवां दृश्य

स्थान—एक मैदान] [चरित्र—राजगुरु, जनता

राजगुरु खड़ा हुआ भाषण दे रहा है। भीड़ में अनेक व्यक्ति शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हैं।]

राजगुरू

मथुरा के नागरिको! वासवदत्ता का अत्याचार अन्तिम सीमा तक पहुँच गया है। आज वह पिशाचिनी माता काली के आगे नरबलि दे रही है। क्या तुम लोग इस पिशाच लीला को देखोगे? क्या इस बर्बरता, पशुता और हिंसा से तुम्हारे तुम्हारा रक्त खौल नहीं उठता है? क्या मथुरा राज्य के निवासी इस पतित और घृणित वेश्या के अत्याचार सहते रहेंगे?

कई आवाजें

कभी नहीं—कभी नहीं।

राजगुरू

तो चलो ! अभी समय है कि तुम उन निरापराध भिक्षुओं को बचा सकते हो जो काली के मन्दिर में बलिदान के खूंटों से पशुओं की भांति बांधे गए हैं ! अभी समय है कि तुम इस अमानुषिक अत्याचार को रोक सकते हो !

कई अवाजें

हम चलते हैं—हम चलते हैं ! राजगुरु की जय ! वासवदत्ता का नाश हो—वासवदत्ता का नाश हो !

काट

पचासीवां दृश्य

स्थान पांचवें दृश्यवाला] [चरित्र—पुजारी, बधिक,
[भिक्षुगण, वासवदत्ता

[बलि के खूंटों से चार भिक्षु बंधे हैं। इन भिक्षुओं के पास चार बधिक खड्ग लिए खड़े हैं। वासवदत्ता हाथ में खड्ग लेकर काली के सामने नृत्य कर रही है।]

काट

छियासीवां दृश्य

स्थान—चौथे दृश्यवाला] [चरित्र—भीड़

[सशस्त्र भीड़ मन्दिर के बाहरी भाग में आती है। भीड़ चिल्ला रही है]

"वासवदत्ता का नाश हो।"

काट

सत्तासीवां दृश्य

स्थान—पांचवें दृश्यवाला] [चरित्र पांचवें दृश्यवाला

[वासवदत्ता का नृत्य चल रहा है कि भीड़ की आवाज़ें सुन पड़ती हैं]

मैं पुजारी

देवि वासवदत्ता, मालूम होता है प्रजा ने विद्रोह कर दिया है।

[वासवदत्ता नृत्य समाप्त करती है]

वासवदत्ता

द्वार पर सशस्त्र सैनिक हैं—बधिक खड्ग लेकर प्रस्तुत हों।—

काट

अट्ठासीवां दृश्य

स्थान—चौथे दृश्यवाला] [चरित्र—भीड़, राजगुरु, सैनिक

एक आदमी

तुम लोगों को लज्जा नहीं आती कि तुम नरबलि में सहायता कर रहे हो।

राजगुरु

मैं राजगुरु आज्ञा देता हूँ कि तुम द्वार से हट जाओ।

[सशस्त्र सैनिक अपने शस्त्र नीचे कर देते हैं और द्वार से हट जाते हैं। भीड़ द्वार तोड़ कर अन्दर घसती है]

काट

नवासीवां दृश्य

स्थान—पांचवें दृश्यवाला] [चरित्र—पचासीवें दृश्यवाला

[वासवदत्ता द्वार पर प्रहार के स्वर सुनती है। वह तेज़ी के साथ कहती है]

वासवदत्ता

बधिक— बलि दो।

[जैसे ही बधिक खड्ग उठाते हैं कि भीड़ घुसती है। बधिक चकित से द्वार की ओर देखते हैं। भीड़ पागल सी वासवदत्ता की ओर दौड़ती है]

भीड़

पिशाचिनी, हत्यारी।

[भीड़ वासवदत्ता पर प्रहार करती है। न जाने कितने छुरे उसके भोंक जाते हैं--एक चीत्कार के साथ वह गिर पड़ती है]

परिवर्तन

नब्बेवां दृश्य

स्थान---राज मार्ग--प्राचीर]

[भीड़ वासवदत्ता के रक्त रंजित शरीर को लेकर चलती है। नगर की प्राचीर के बाहर वह उसके शरीर को फेंक देती है]

इक्कानबेवां दृश्य

स्थान--नगर की प्राचीर के बाहर वाला मैदान] [चरित्र--वासवदत्ता--भीड़--उपगुप्त

[रक्त से सनी हुई वासवदत्ता भूमि पर पड़ी है। वह अपना मुख खोलती है--लेकिन मुख से स्वर नहीं निकलता। प्राचीर पर बैठे मनुष्य उसकी ओर देख कर थूकते हैं। इस समय उपगुप्त आता है। वह वासवदत्ता के पास रुकता है। भूमि पर बैठ कर वह वासवदत्ता के मुख में पानी डालता है]

ासवदत्ता

इस हत्यारिन और पिशाचिनी के ऊपर दया दिखाने वाले तुम कौन हो ?

उपगुप्त

शान्त रहें—मैं उपगुप्त हूँ।

वासवदत्ता

उपगुप्त!—तुम—आज, जब मैं मर रही हूं, जब मेरे प्राण पश्चात्ताप से तड़फड़ा रहे हैं—आज तुम क्यों आए हो?

उपगुप्त

आज तुम्हें मेरी आवश्यकता है नर्तकी!

[वासवदत्ता प्रयत्न से अपनी आँखें खोलती है। उपगुप्त वासवदत्ता के घावों पर दवा लगा कर पट्टी बांध रहा है—वासवदत्ता उपगुप्त को देखती है। उसके मुख पर एक मुसकराहट आती है और फिर वह अपनी आखें बन्द कर लेती है। उपगुप्त वासवदत्ता को अपने हाथों में उठा कर चलता है]

उपगुप्त का गान

यह उत्थान पतन है शाश्वत, गति का गुण चंचलता है
यहां पाप कुछ नहीं कि जो कुछ मानव की निर्बलता है
बुद्धं शरणं, संघं शरणं—यह निर्वाण-मार्ग केवल
सेवा का जो इष्ट वही जीवन की सकल सफलता है।
दया-प्रेम-ममता-मय मानव, मानव बन कर जियो मरो
यह अग जग पीड़ित अति दुख से दया करो तुम दया करो!

क्रमालोप

समाप्त